अंक : 1, जून 2011

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
जून 2011, अंक 1

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० के द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004, फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geag_india@yahoo.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक, 3rd स्टेज,
बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512, +91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : amebang@giasbg01.vsnl.net.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक : के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन
प्रबन्ध सम्पादक : टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
अरूण कुमार शिवाराय, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
एम० शोभा मइया, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
राजेश गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, इण्डोनेशियन, पश्चिमी अफ्रीकन, ब्राज़ीलियन एवं चाइनीज़ संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया एवं तेलगू

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

प्रिय पाठक

आपके समक्ष हिन्दी अनुवाद का जून 2011 अंक प्रस्तुत है। आपके उत्साहवर्धक सहयोग के लिए धन्यवाद। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि जर्मनी की एक दाता संस्था माइजेरियर इस गतिविधि को 2011–13 की अवधि के लिए सहयोग प्रदान करने पर सहमत हो गई है। इस सहयोग के साथ हम अधिकाधिक पाठकों और जमीन से जुड़ कर काम करने वाली संगठनों तक अपनी पहुँच बनाना चाहते हैं। पारिस्थितिकी कृषि में रूचि रखने वाले लोगों या संस्थाओं तक पहुँचने में मदद करें। हमें यह पत्रिका प्रेषित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है। कृपया पत्रिका के साथ संलग्न फार्म को भरकर हमें वापस भेजें।

हमें यह बताते हुए प्रसन्नता है कि हिन्दी अंक को अधिक प्रशंसा मिल रही है। स्थानीय भाषा में होने के कारण बहुत से पाठक इसे अच्छे ढंग से समझ पा रहे हैं। हमें वास्तविक लेखों के लिए भी सकारात्मक प्रतिक्रिया मिल रही है।

इस अंक में विभिन्न विषयों जैसे स्थानीय संस्थानों की मजबूती, खाद्य सम्प्रभुता, स्थानीय संसाधनों का संरक्षण व प्रबन्धन, विविधीकृत खेती की वर्तमान में आवश्यकता एवं स्थानीय संसाधनों से बाढ़ का मुकाबला आदि को शामिल किया है। आशा है कि इसे पढ़कर आपको प्रसन्नता मिलेगी। पत्रिका हेतु आपके सुझावों का स्वागत है।

लीज़ा इण्डिया टीम
जून, 2011

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपना उत्पादन और आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही वाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

स्थानीय सुदृढ़ संस्थाओं द्वारा स्थाई खेती वित्त प्रबन्धन 5

डी0 रंगनाथ बाबू

जमीनी स्तर पर स्थानीय मानव संसाधनों और साधारण वित्त तंत्र को तैयार कर स्वयं सहायता समूह सहायतित गतिविधियों को सुनिश्चित किया जा सकता है। बेलाकू, एक संस्था है, जो एक ऐसी ही गतिविधि से प्राप्त अनुभवों के आधार पर स्थाई ग्रामीण पहल को प्रसारित कर रही है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गाँव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–www.amefound.org

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्धान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

तैरती खेती (गाओटा) के साथ समुदाय ने किया बाढ़ स्थितियों का मुकाबला 7

सुकन्ता सेन व फहीम अल जायद

बांगलादेश के दक्षिण–पश्चिम भाग के उन निचले क्षेत्रों में तैरती खेती एक अच्छा व प्रचलित अभ्यास है, जहां साल के अधिकांश समय जमीन पानी से डूबी रहती है। तैरती खेती न सिर्फ बाढ़ के दौरान स्थितियों का सामना करने के लिए, वरन् देश में खाद्य उत्पादन बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम भी है।

वर्षा आधारित धान की खेती में उन्नति के सोपान 9

संगीता पाटिल

आनुवांशिक योग्यता के साथ खेती आधारित अभ्यासों का बड़े क्षेत्रों में समान रूप से प्रसार प्रायः कठिन होता है। यह एक अभ्यास के लिए बहुत अधिक चुनौतियों भरा होता है, परन्तु यदि बेहतर नियोजन किया जाये, तो परिणाम सुखद होते हैं – जैसे एस0आर0आई विधि वर्षा आधारित स्थितियों में आजमाई गयी और मानक अनुरूप भी रही। कुछ परिस्थितियों में, एक उचित नियोजित रणनीति की आवश्यकता होती है।

विविधीकृत खेती तंत्र–अतीत से सीख कर भविष्य की ओर अग्रसर 14

अर्धेन्दु शेखर चटर्जी

खेती को शामिल करते हुए संस्कृति और प्रकृति दोनों में विविधता बड़ी तेजी से विलुप्त हो रही है, लेकिन अभी भी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है। लाभ की सच्चाई और कमजोर पारिस्थितिकी में एक विश्वसनीय विकल्प के तौर पर समुदाय विविधता को संजो रही है। यह लेख इस मुद्दे पर केन्द्रित है कि उपलब्धता और समर्थ विकल्प एक अवरोध की तरह हैं।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, जून 2011

5 **स्थानीय सुदृढ़ संस्थाओं द्वारा स्थाई खेती वित्त प्रबन्धन**
डी0 रंगनाथ बाबू

7 **तैरती खेती (गाओटा) के साथ समुदाय ने किया बाढ़ स्थितियों का मुकाबला**
सुकन्ता सेन व फहीम अल जायद

9 **वर्षा आधारित धान की खेती में उन्नति के सोपान**
संगीता पाटिल

13 **महिला व खाद्य सम्प्रभुता**
एल. नारायण रेड्डी

14 **विविधीकृत खेती तंत्र– अतीत से सीखकर भविष्य की ओर अग्रसर**
अर्धेन्दु शेखर चटर्जी

18 **आजीविका स्थाईत्व के लिए ओरान्स का संरक्षण**
अमन सिंह व आदित्य गुप्ता

आजीविका स्थाईत्व के लिए ओरान्स का संरक्षण 18

अमन सिंह व आदित्य गुप्ता

अरावली की पहाड़ियों में निवास करने वाले समुदायों व पशुओं के भोजन, चारे, जल और ईंधन का एक प्रमुख स्रोत ओरान्स हैं। स्थानीय समुदायों ने एक संस्था ''कृषि एवं पारिस्थितिकी विकास संस्थान'' के सहयोग से ओरान्स को संरक्षित कर लाभदायी गतिविधियों के उन्नयन का कार्य किया है।

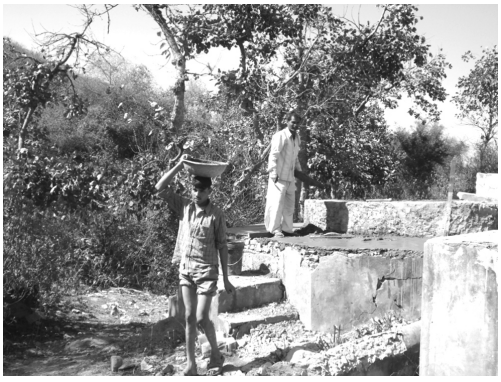

यह अंक...

लीज़ा इण्डिया का यह अंक खरीफ मौसम, बाढ़ की परिस्थितियों तथा खेती में विविधता के महत्व पर आधारित है। बाढ़ से निपटने हेतु देश–विदेश में किसानों द्वारा अपने स्तर पर किस प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं, इसे दर्शाता यह अंक खेती एवं आजीविका स्थाईत्व के लिए उत्पन्न चुनौतियों पर भी केन्द्रित है। समुदाय आधारित प्रयास विकासात्मक गतिविधियों को नयी दिशा देने में सक्षम हैं।

इस अंक का पहला लेख डी रंगनाथ बाबू द्वारा लिखित ''स्थानीय सुदृढ़ संस्थाओं द्वारा स्थाई खेती वित्त प्रबन्धन'' जहां स्वयं सहायता समूह के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया को बताता है, वहीं बांग्लादेश के स्थानीय समुदायों द्वारा स्थानीय संसाधनों से बाढ़ का मुकाबला करने पर आधारित सुकन्ता सेन व फहीम अल जायद का लेख ''तैरती खेती (गाओटा) से किया समुदाय ने बाढ़ का मुकाबला'' भी शामिल है। एक तरफ संगीता पाटिल द्वारा लिखित ''वर्षा आधारित धान की खेती में उन्नति के सोपान'' एस0आर0आई0 विधि पर किसानों का ज्ञान वर्धन करती है, तो दूसरी तरफ ''महिला व खाद्य सम्प्रभुता'' के माध्यम से नारायण रेड्डी ने बीटी बीजों के औचित्य पर सवाल खड़ा किया है। अर्धेन्दु शेखर चटर्जी ने अपने लेख ''विविधीकृत खेती : अतीत से सीख कर भविष्य की ओर अग्रसर'' के माध्यम से खेती, प्रकृति व संस्कृति में पारम्परिकता की वकालत करते हुए पुनः उन्हें अपनाने पर जोर दिया है। विविधीकरण की एक पूरी श्रृंखला का उल्लेख करते हुए अर्धेन्दु दा ने पारम्परिकता अपनाने के फायदों पर चर्चा करते हुए इसकी सीमाओं को भी बताया है।

अमन सिंह व आदित्य गुप्ता का लेख ''आजीविका स्थाईतव के लिए ओरान्स का संरक्षण'' बदलती जलवायुविक परिस्थितियों में आजीविका के विकल्पों हेतु स्थानीय संसाधनों के संरक्षण पर आधारित है। यह लेख हमें यह भी बताता है कि स्थानीय वन व जल संपदाओं को संरक्षित कर हम स्वयं, अपने पशुओं एवं अपनी खेती की जरूरतें भी पूरी कर सकते हैं। पूरी पत्रिका में महिलाओं की सशक्तता कई गतिविधियों से उजागर होती है।

अन्त में लेख चयन एवं विषय वस्तु पर पाठकों के प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा आतुरता से रहेगी, क्योंकि वही इन लेखों की सार्थकता को परखने हेतु असली जौहरी हैं और वे ही इसकी प्रभावोत्पादकता एवं उपयुक्तता का उचित आकलन कर सकेगें।

• सम्पादक मण्डल

स्थानीय सुदृढ़ संस्थाओं द्वारा स्थाई खेती वित्त प्रबन्धन

जमीनी स्तर पर स्थानीय मानव संसाधनों और साधारण वित्त तंत्र को तैयार कर स्वयं सहायता समूह सहायतित गतिविधियों को सुनिश्चित किया जा सकता है। बेलाकू, एक संस्था है, जो एक ऐसी ही गतिविधि से प्राप्त अनुभवों के आधार पर स्थाई ग्रामीण पहल को प्रसारित कर रही है।

डी० रंगनाथ बाबू

भारत में सामाजिक क्षेत्र की उन्नति में स्वयं सहायता समूह अभियान एक द्रुतगामी कदम है, जो बहुत सी ग्रामीण महिलाओं को अपनी आवश्यकता पूरा करने के लिए धनराशि उपलब्ध कराती है। गैर सरकारी संगठनों के सहयोग से आरम्भ की गयी स्वयं सहायता समूह गतिविधि मुख्यतः सरकार के समान ही विकासात्मक गति–विधियों के लिए एक चैनल के तौर पर जमीनी स्तर पर कार्यरत है।

आजकल, हम देखते हैं कि अधिकतर स्वयं सहायता समूह विभिन्न कारणों से या तो मृतप्राय पड़े हुए हैं, या टूट गये हैं। परियोजना अवधि समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाहरी सहायता के वे अपने– आपको चला पाने में सक्षम नहीं हैं। इन संस्थाओं की निरन्तरता बनाये रखने हेतु परियोजना प्रारम्भ के समय से ही स्थानीय संस्थाओं को मजबूत करने की दिशा में उनके साथ काम करना होगा, तभी आपातकालीन स्थितियों में उनमें स्थाईत्व बना रह सकेगा। निम्नलिखित घटना एक ऐसा ही विशिष्ट उदाहरण है कि किस प्रकार स्वयं सहायता समूह ने अपने–आपको इतना सक्षम बना लिया कि परियोजना अवधि समाप्ति के बाद भी वह एक बेहतर नियोजित रणनीति के साथ क्षेत्र में काम कर सकने में सक्षम हो सकी–

उदाहरण

40 घरों का डी. उपराहाल्ली कर्नाटक राज्य के कोलार जिले के तालुका मालुर का एक ऐसा ही गांव है। वर्ष 2002 में विश्व बैंक से अनुदानित परियोजना ''वाटरशेड'' के तहत् इस गांव के गरीब घरों की महिलाओं ने एक स्वयं सहायता समूह का गठन किया। परियोजना अवधि के दौरान समूह की सदस्याएं परियोजना की विभिन्न गतिविधियों से लाभान्वित होती रहीं। पांच साल तक चले इस परियोजना के समाप्त हो जाने के बाद कोई भी ऐसी समुचित योजना नहीं थी, जो यह सुनिश्चित कर सके कि गठित स्वयं सहायता समूह निरन्तर संचालित रहेगें।

वर्ष 2009 में, सृजन नामक संस्था ने सर रतन टाटा ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से आजीविका सम्बन्धी गतिविधियों को उसी गांव में संचालित किया। इसका मुख्य उद्देश्य गांव में पहले से मौजूद संगठनों को मजबूती प्रदान करना और आजीविका आधारित गतिविधियों के लिए ऋण दिलाने हेतु बैंक से उनका जुड़ाव कराना था। जब डी. उपराहाल्ली में संस्था कार्यकर्त्ताओं ने भ्रमण किया तो पाया कि वहां पर स्वयं सहायता समूह काम नहीं कर रहे हैं और लोग अपनी वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साहूकारों पर निर्भर हैं। वाटरशेड परियोजना के अन्तर्गत गठित किये गये स्वयं सहायता समूह अस्तित्व में नहीं हैं।

चर्चा व विचार–विमर्श के दौरान, महिलाओं ने स्वयं सहायता समूह के समुचित संचालन न होने सम्बन्धी निम्न कारणों पर प्रकाश डाला–

- दैनिक कार्य सम्पादन के लिए कोई मार्गदर्शन नहीं था।
- बाहरी संस्थाओं द्वारा अपनी संस्था मानकर स्वयं सहायता समूह के पैसे का दुरूपयोग करना।
- लेखा–जोखा के समुचित रख–रखाव में अक्षमता, क्योंकि अधिकांश सदस्य अनपढ़ थे।
- ऋण के लिए बैंकों से उनका जुड़ाव न हो पाना।

महिलाओं की सहमति से, वर्ष 2009 में सृजन ने एक बार पुनः 14 सदस्यों को एकत्र कर ''लक्ष्मी महिला रायत्रा संघ'' नामक समूह का गठन किया। समूह ने सहभागी पद्धति से एक नियमावली बनाई। सृजन की टीम ने सिर्फ स्वयं सहायता समूह को मजबूती प्रदान करने वाले तंत्र को सुगम करने का काम किया। सदस्यों ने रू0 100.00 प्रति माह की बचत शुरू की और आपस में ऋण का लेन–देन भी पहली बैठक से ही शुरू कर दिया। प्रारम्भिक बैठक में स्वास्थ्य सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करने के लिए ऋण दिया गया। समूह के सभी सदस्य छोटे, सीमान्त खेतिहर परिवारों से सम्बन्ध रखते थे, जिनके पास 0.5–2 एकड़ के बीच खेती थी। रागी यहां की मुख्य फसल थी, जिसका उत्पादन बहुत ही कम अर्थात् प्रति एकड़ मात्र 6 कुन्तल ही होता था। सृजन दल ने स्थाई खेती गतिविधियों को अपनाने में किसानों की मदद की। परिणामस्वरूप रागी की उपज में प्रति एकड़ एक से डेढ़ कुन्तल का इज़ाफा हुआ।

वर्ष 2010 में, जब सृजन ने अपने कार्यक्षेत्र को मालुर से कादुर में स्थानान्तरित किया तो एक दूसरी संस्था बेलाकू ने समूह को आगे चलाने हेतु निर्देशन की जिम्मेदारी संभाल ली। बेलाकू, जो मालुर में

30 स्वयं सहायता समूहों के साथ सघनता से काम कर रही थी, इस बात में दृढ़ता से विश्वास रखती थी कि सामाजिक विकास के क्षेत्र में रोजगार हेतु ग्रामीण युवाओं को तैयार करना चाहिए। अपनी इसी सोच के अनुसार उसने एक ग्रामीण युवा को समूह के रजिस्टरों के रख–रखाव हेतु चिन्हित किया और उसे अपने काम को करने के लिए पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित किया। समूह के सदस्य उस युवा द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के बदले उसे रू0 100.00 देने को तैयार हो गये और इस प्रकार उनके अन्दर समूह के स्वामित्व की भावना का निर्माण हुआ।

क्रमशः दिनोंदिन सदस्यों के अन्दर आवश्यकता की प्राथमिकता एवं ऋण के लिए बैंक तक पहुंच बनाने का निर्णय करने की क्षमता का विकास होता गया। बेलाकू के सदस्यों ने स्थानीय राष्ट्रीयकृत बैंकों तक अपनी पहुंच बनाने का प्रयास किया, लेकिन शुरूआत बहुत उत्साहजनक नहीं रही। इसी बीच, एम0एफ0आई0 समूह को ऋण देने के लिए तैयार हो गयी, परन्तु समूह ने एम0एफ0आई0 से पैसा लेने से इन्कार कर दिया, क्योंकि एक तो एम0एफ0आई0 साप्ताहिक तौर पर पैसे की वापसी चाहती थी, दूसरे इसकी ब्याज दर बहुत अधिक थी और तीसरी व महत्पूर्ण बात यह थी कि न तो पैसा वापसी में कोई लचीलापन था और न ही इस तरह से पैसा बचाने की कोई गुंजाइश थी। फिर भी, बेलाकू सदस्यों ने आठ महीने में ही सदस्यों को बैंक से ऋण लेने में सक्षम बनाकर भारतीय स्टेट बैंक, मालुर शाखा से ऋण दिलवाया।

समूह के 8 सदस्यों को ऋण के माध्यम से एक लाख रूपया उपलब्ध कराया गया। कुल ऋण का 60 प्रतिशत भेड़ खरीदने में प्रयुक्त हुआ जबकि शेष 40 प्रतिशत अन्य दूसरे कार्यों जैसे – घर की मरम्मत, शिक्षा, पहले से उच्च दर पर लिये गये ऋण की अदायगी आदि में व्यय किया गया।

वित्तीय दक्षता विकसित करने के तरीके/उपाय

व्यवस्था का सरल खाका तैयार करना : यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि समुदाय स्तर पर अत्यन्त सरल तरीके से संचालन व्यवस्था की जाये ताकि समुदाय इसे आसानी से सम्पादित कर सके।

सेवा प्रदाताओं को शामिल करना : चूंकि समूह में अधिकतर सदस्य महिलाएं होती हैं और उनके पास कहीं आने–जाने हेतु अपना स्वयं का साधन न होने के कारण सेवा–सुविधाओं तक उनकी पहुंच में कठिनाई होती है। अतः सवेतन कर्मचारी रखने का विचार महिलाओं की पहुंच सेवाओं तक बनाने में मदद करने के साथ ही समूह की गतिविधियों को स्थाईत्व प्रदान करने में भी सहायक होगा।

लेखा व्यवस्था में पारदर्शिता बनाये रखना : अधिकांश सदस्यों को अपने व्यक्तिगत खाते के लेखा विवरण के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं होती है। मासिक आधार पर लेखा का मजबूत विवरण भविष्य में पारदर्शिता और सदस्यों के बीच विश्वास बनाये रखने में सफल होगा।

यद्यपि सदस्य डेयरी उद्योग खोलने में रूचि रखते थे और उन्होंने इसके लिए अपनी पूरी तैयारी भी कर ली थी, परन्तु उस क्षेत्र में डेयरी उद्योग खोलने के लिए अनुकूल माहौल नहीं था। वहां पर चारे व पानी का अभाव था। अतः किसान भेड़ पालन एवं उनको खिलाने–पिलाने में रम गये। वे यह भी जानते थे कि भेड़ पालकर ही वे अपने ऋण की अदायगी एक से डेढ़ साल में कर लेगें।

शेष भाग पृष्ठ 8 पर....

तैरती खेती (गाओटा) के साथ समुदाय ने किया बाढ़ स्थितियों का मुकाबला

बांगलादेश के दक्षिण–पश्चिम भाग के उन निचले क्षेत्रों में तैरती खेती एक अच्छा व प्रचलित अभ्यास है, जहां साल के अधिकांश समय जमीन पानी से डूबी रहती है। तैरती खेती न सिर्फ बाढ़ के दौरान स्थितियों का सामना करने के लिए है, वरन् यह देश में खाद्य उत्पादन बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम भी है।

सुकन्ता सेन व फहीम अल जायद

बांग्लादेश के मुकसोर्दपुर उप जनपद में अवस्थित गांव बासुदेवपुर सभी दिशाओं से चान्देर बील (नम भूमि) से घिरा हुआ है। बील एक छोटी तश्तरी जैसी है, जो आन्तरिक जल निकासी चैनलों से लाये जल को संचय करती है और उसी के दबाव से वहां हमेशा जलीय भूमि बनी रहती है। इस दबाव के कारण हो रहे क्षरण की वजह से उत्पन्न होने वाले प्रभावों को पूरे बांग्लादेश में देखा जा सकता है। जाड़ों में यह थोड़ा सूखा रहता है, परन्तु मानसून के समय में यह भयंकर स्वरूप धारण कर लेता है और अपने उथले सतह में जल को समाहित न कर पाने के कारण एक बड़े परिक्षेत्र को आच्छादित कर लेता है। चान्देर बील की वजह से लगभग 26 हजार एकड़ भूमि प्रभावित हो रही है।

बरसात के महीने में समूचा गांव मानो पानी पर तैरने लगता है और लोग अपने वैकल्पिक पेशे के तौर पर मछली मारने लगते हैं। जब बील से पानी घटने लगता है, उस समय बहुत अधिक संख्या में मछलियां मिलने लगती हैं। मछली मारने से प्रत्येक घर को पोषक तत्व तो मिलते ही हैं, साथ ही यह परिवार के लिए अतिरिक्त आमदनी भी उपलब्ध कराती है।

यदि यह कहा जाये कि बासुदेवपुर एक लम्बे समय अर्थात् वर्ष में लगभग 6 महीनों के लिए पानी में डूबकर ठहर जाता है, तो अतिश्योक्ति न होगी। गांव में अधिकांशतः लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत खेती ही है। पूरे गांव की खेती 6 महीनों के लिए पानी में डूबी रहती है। ऐसे में जबकि खेत पानी में डूबे हों, उस दौरान खेत में कोई भी फसल उगाना संभव नहीं होता है। इस स्थिति का मुकाबला करने के लिए क्षेत्र के लोगों ने बाढ़ स्थितियों का सामना करने के लिए मृदा विहीन कृषिगत पद्धति अपनाने का विचार किया, जिसे स्थानीय तौर पर गाओटा अर्थात् तैरती खेती कहते हैं। इस क्षेत्र में इस पद्धति को अपना कर बहुत से लोगों ने अपनी आजीविका और खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया है।

गाओटा पर खाद्य उत्पादन

इस क्षेत्र में तैरती क्यारी में सब्ज़ियों की 20 से अधिक किस्मों जैसे – लाल चौराई, पालक, भारतीय पालक, धनिया पत्ती, फूलगोभी, टमाटर, भिण्डी, खीरा, लौकी, करैला, चिचिण्डा, सरपुतिया, कद्दू,

चान्देर बील के लिए सिर्फ वर्षा का पानी ही एक मात्र स्रोत नहीं है। एक ओर उत्तर से पदमा नदी का मीठा पानी बील में एरियल खा और कुमार नदी के माध्यम से आता है। दूसरी तरफ दक्षिण से पोसुर और मदुमोती नदी भी बील को पानी उपलब्ध कराती है। वहीं दूसरी ओर समूचे बील के चारों तरफ चालीस से पचास नाले हैं, जो दक्षिण और उत्तर से आने वाली इन नदियां से सम्बद्ध होने के कारण पूरे बील को इन नदियों का पानी पहुँचाते रहते हैं। मानसून के दौरान, इसका आकार और स्वरूप बहुत बड़ा हो जाता है और एक बड़ा क्षेत्र अनुमानतः 40–45 गांव इसके प्रभाव में आ जाते हैं।

राजमा, मूली, बैगन, आलू और अन्य विभिन्न प्रजातियां उगाई जाती हैं। यहां के किसान विशेष रूप से तैरते गाओटा पर कन्द वाली सब्ज़ियां उगाने करने में रूचि रखते हैं। उन्होंने पाया है कि कन्द वाली कुछ फसलें जैसे – हल्दी, आलू, अदरक और अरवी मिट्टी की अपेक्षा गाओटा पर अच्छे तरीके से उगाई जा सकती हैं। इसका

तैरता गाओटा

तैरती खेती को स्थानीय भाषा में गाओटा कहते हैं। तैरती क्यारी एक पारम्परिक विधा है, जिसे तकनीक के साथ मिला कर बनाया गया है। तैरती क्यारी बनाने के लिए बांस के टुकड़े, जूता, दरांती आदि की आवश्यकता पड़ती है। सबसे पहले किसान इसे ठोस बनाने के लिए सघन जलकुम्भी में बांस के खम्भे को लिटाते हैं। इसकी मोटाई जल–जमाव की अवधि पर निर्भर करती है, ताकि यह पूरे समय पानी पर तैरती रहे। शीघ्रता से इस प्रक्रिया को पूरा करने के बाद किसान पिछले साल प्रयोग किये गये अवशिष्ट सामग्रियों का प्रयोग करते हैं।

यदि आवश्यक हो तो सामग्री के एकत्रीकरण और तैयारी के 20–30 दिनों बाद फसल उगाना प्रारम्भ कर देते हैं। बेड तैयार करने के बाद किसान धान के पौधों की रोपाई कर सकते हैं या फिर सब्ज़ियों के बीज की बुवाई कर सकते हैं। सामान्यतः किसान अन्तः फसल तकनीक को अपनाते हैं और बेड से दो या तीन समय फसल लेते हैं।

कारण यह है कि मिट्टी बहुत कड़ी होती है और कन्द कड़ी मिट्टी को छेद कर अन्दर नहीं प्रवेश कर सकती, लेकिन गाओटा, जो कि पुआल या जलकुम्भी से बनी होती है, बहुत ही मुलायम और हमेशा गीली होती है, जिससे कन्द वाली फसलें अच्छी तरह से उगती हैं। अब जब किसान गाओटा पर सब्ज़ियां उगाते हैं, तब वे किसी प्रकार का रसायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक भी नहीं प्रयोग करते हैं। गाओटा की प्रकृति में समग्र रूप से जैविकता विद्यमान होती है, क्योंकि मौसम बदलने के बाद इसे ऊँची भूमि पर ले जाते हैं और इसमें मिट्टी मिलाते हैं।

कुछ और फायदे

खाद्य उत्पादन में मदद करने के अतिरिक्त गाओटा गरीब वर्ग विशेषकर भूमिहीन परिवारों की आर्थिक नाजुकता को भी कम कर सकती है। भूमिहीन लोग, जो अपनी भूमि न होने के कारण अपने लिए अनाज उत्पादित करने से वंचित रहते हैं, वे बरसात के मौसम के दौरान गाओटा पद्धति अपना कर अनाज और सब्ज़ियों की फसल ले सकते हैं। वे अपने परिवार को पोषकता प्रदान करने और अतिरिक्त आमदनी प्राप्त करने हेतु बील से मछली भी मार सकते हैं।

गाओटा प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़ का सामना करने का माध्यम भी बन सकता है। 1988 और 1998 की भयंकर बाढ़ के दौरान, चान्देर बील के निकटवर्ती गांवों के स्थानीय लोगों ने अपने परिवार, जरूरी सामानों यहां तक कि पशुधन के साथ तैरते गाओटा पर अस्थाई शरण भी लिया था। कुछ परिवार तैरते गाओटा के ऊपर छत डालकर उसी पर एक से दो माह के लिए रहते हैं।

आगामी चुनौतियां

इतने सारे गुण एवं संभावनाएं होने के बावजूद तैरती खेती के सामने कुछ चुनौतियां भी हैं। त्वरित विकास के कारण आरम्भ की गयी गतिविधियों जैसे सड़क निर्माण और उत्तरी तरफ की नदी पर बन रहे बहुसंख्यक बांधों से चान्देर बील में मीठे पानी का आना दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। दूसरी तरफ, समुद्र का जलस्तर बढ़ने से दक्षिणी तरफ की नदी से होते हुए चान्देर बील में खारा पानी आ रहा है। बढ़ता खारापन पानी में जैव विविधता के लिए एक गम्भीर संकट है। गौर तलब है कि जलकुम्भी, जो कि गाओटा के अन्तर्गत फसल उगाने के लिए आधार के तौर पर प्रमुखता से प्रयुक्त किया जाता है, वह खारे पानी में नहीं उग सकती। सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि, जमीन भी बहुत अधिक दिनों तक खारे पानी से डूबे रहने के कारण रबी ऋतु में फसल उगाने योग्य नहीं रह जा रही है और यह खाद्य संकट का एक बड़ा कारण है। अतः दक्षिण तरफ की नदी से आने वाले खारे पानी के बहाव को रोकने हेतु तुरन्त पहल करने की आवश्यकता है। इसके लिए अलग तरह की गतिविधियां जैसे नहर निकालना आदि करना होगा।

तैरती खेती का स्थानीय गहरे पानी वाली धान की प्रजातियों के उत्पादन से एक अटूट सम्बन्ध है। अमन ऋतु में उगायी जाने वाली गहरे पानी वाले धान का पुआल/भूसी गाओटा पद्धति से खेती करने हेतु एक उत्तम आधार होता है, लेकिन जब किसानों ने अपनी खेती पद्धति में परिवर्तन किया और धान की अधिक उपज देने वाली प्रजातियों को लगाना प्रारम्भ किया, तो प्रचुर मात्रा में पुआल न मिलने से लोगों ने आधार सामग्री के तौर पर जलकुम्भी का प्रयोग किया। बढ़ते खारे पानी की समस्या ने इस आधार अर्थात् ''जलकुम्भी'' पर भी संकट उत्पन्न कर दिया है क्योंकि जलकुम्भी खारे पानी में अपनी उत्तरजीविता बहुत अधिक नहीं बनाये रख सकती है। अतः यह आवश्यक है कि तैरती खेती पद्धति में स्थानीय गहरे पानी की प्रजातियों के उत्पादन को महत्व दिया जाये।

तैरती खेती बांगलादेश के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में निचले क्षेत्रों की एक बेहतर प्रचलित अभ्यास है, जहां साल में लम्बे समय तक जमीन बहुधा पानी में डूबी रहती है। यहां पर तैरती खेती बाढ़ के दौरान उससे बचने का सिर्फ एक माध्यम नहीं है, वरन् यह देश में खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने का एक सशक्त माध्यम भी है। तथापि, इस अभ्यास के बड़े पैमाने पर प्रसारण के लिए जागरूकता उत्पन्न करने व इस गतिविधि को स्थाईत्व प्रदान करने के लिए सरकार से सहयोग की आवश्यकता हेतु प्रयास करना होगा।

■

अधिशासी निदेशक व सम्बद्ध रिसर्चर
बारसिक
हाउस नं० 50, सड़क # 27
धानमण्डी आर/ए
ढाका, बांग्लादेश
ईमेल : barcik@bdonline.com

Managing Water for Sustainable Farming
LEISA INDIA, Vol. 12, No.3, Pg. # 22-23, September 2010

पृष्ठ 6 का शेष भाग....

विकल्पों की जानकारी होने के बाद अब समूह आगे चलने हेतु आत्मविश्वास से भरा हुआ है। समूह के सदस्य इस बात की भी योजना बना रहे हैं कि सभी सदस्यों को बराबर का लाभांश मिलने की सुनिश्चितता रहे। सभी सदस्य अपने गांव में बड़े पैमाने पर हो रहे यूकिलिप्टस वृक्षारोपण से उत्पन्न पर्यावरण खतरे की गम्भीरता को समझ रहे हैं और यूकिलिप्टस वृक्षारोपण के विस्तार को रोकने के लिए वे वैकल्पिक गतिविधियों को भी खोज रहे हैं।

रास्ते और हैं

बेलाकू ने इस दौरान प्राप्त अनुभवों और सीखों को आपस में बांटा। उसने यह महसूस किया कि सामुदायिक स्तर पर यह आवश्यक है कि परियोजना गतिविधियों के क्रियान्वयन से पहले संगठनों/संस्थाओं को मजबूत किया जाये। यह अधिक महत्वपूर्ण है कि बाहरी संस्थाएं सिर्फ सुगमीकरण का काम करें और संगठनों पर समुदाय के स्वामित्व को सुनिश्चित करें। इससे स्थानीय लोगों की क्षमता अभिवृद्धि होगी, विशेषकर युवा वर्ग का एक ऐसा समूह तैयार होगा, जो अपने कामों के प्रति प्रतिबद्ध होगा।

■

अधिशासी निदेशक
बेलाकू–स्थाई ग्रामीण पहल के लिए एक संस्था
जी०पी०एम० बिल्डिंग, मारूथी एक्सटेण्शन, मालुर
जिला–कोलार, कर्नाटक
ईमेल : belaku2004@gmail.com, ranganatha_babu@yahoo.co.in

Finance for Farming
LEISA INDIA, Vol. 12, No.2, Pg. # 25-26, June 2010

वर्षा आधारित धान की खेती में उन्नति के सोपान

आनुवांशिक योग्यता के साथ खेती आधारित अभ्यासों का बड़े क्षेत्रों में समान रूप से प्रसार प्रायः कठिन होता है। यह एक अभ्यास के लिए बहुत अधिक चुनौतियों भरा होता है, परन्तु यदि बेहतर नियोजन किया जाये, तो परिणाम सुखद होते हैं – जैसे एस.आर.आई. विधि वर्षा आधारित स्थितियों में आजमाई गयी और मानक अनुरूप भी रही। कुछ परिस्थितियों में, एक उचित नियोजित रणनीति की आवश्यकता होती है।

संगीता पाटिल

कर्नाटक में धारवाड जिले के वीरपुर, कल्लापुर, रामपुर और नागालवी गांवों में धान एक मुख्य खाद्य फसल के तौर पर उगाई जाती है। इन गांवों में किसान अपने खाने के चुनौतीपूर्ण लक्ष्य को पूरा करने के लिए परम्परागत तरीके से फसलें उगाते हैं। ये तरीके समय की कसौटी पर परखे गये हैं। गांव में खेती योग्य कुल भूमि के 95 प्रतिशत क्षेत्र पर धान की खेती की जाती है। अतः धान वहां की एक मुख्य फसल है। इस क्षेत्र में औसतन वार्षिक वर्षा 772 मिमी0 है, जो सामान्य से अधिक वर्षा है। इसीलिए धान की खेती वर्षा आधारित स्थितियों में की जाती है। बहुतायत में लोग सीड ड्रिल का प्रयोग प्रत्यक्ष बुवाई के लिए करते हैं। 2 प्रतिशत से कम किसान रोपाई करते हैं।

किसान खेती में बहुत सी समस्याओं का सामना कर रहे हैं। जैसे – अधिक खर–पतवार का उगना, कीटों व बीमारियों का अत्यधिक प्रकोप, परिणाम स्वरूप उत्पादन कम। हालांकि वे इन समस्याओं के साथ ही रह रहे हैं, क्योंकि वे नहीं जान पा रहे हैं कि इनका सामना कैसे किया जाये? एक स्वैच्छिक संगठन ए.एम.ई. फाउण्डेशन इन समस्याओं से निपटने के लिए उत्सुक होकर इस क्षेत्र में काम कर रही है। उसने अति न्यून संसाधनों के प्रयोग से एक अलग तरीके से धान उगाने की विधि को प्रोत्साहित किया, जो सिस्टम ऑफ राईस इन्टेन्सिफिकेशन (एस.आर.आई. या श्री विधि) के नाम से प्रचलित है। ए.एम.ई. फाउण्डेशन पहले से ही उन दूसरे क्षेत्रों में, जहां सिंचाई की स्थिति में धान उगाया जाता है, एस.आर.आई. विधि को सफलतापूर्वक प्रोत्साहित कर रहा है।

एस.आर.आई. नये विचारों और अभ्यासों पर आधारित विधि है, जिससे अनुकूल वातावरण में अधिक कल्ले निकलते हैं और एक पर्यावरण सम्मत तरीके से अधिक उपज एवं प्राप्ति प्राप्त होती है। मृदा, जल, पौधों एवं पौध पोषण प्रबन्धन के बदलाव द्वारा एस.आर.आई. विधि स्वस्थ, अधिक उपज देने वाली मिट्टी और पौधों को तैयार करती है, क्योंकि बुवाई के तरीके के कारण जड़ों के गहरे विकास द्वारा मिट्टी के विविध सूक्ष्म जीवों की वृद्धि बहुतायत में होती है। पहली बार, वर्षा आधारित धान की खेती में अपनाये गये एस.आर.आई. विधि से ए.एम.ई. फाउण्डेशन को एक विलक्षण अनुभव की प्राप्ति हुई।

शुरूआत...

सर्वप्रथम ए.एम.ई. फाउण्डेशन ने धारवाड जिले के वीरपुर, कल्लापुर, रामपुर और नागालवी गांवों में आधारभूत सर्वेक्षण कराया, प्रत्येक गांवों में ग्राम सभाएं कराई, एवं गांव की परिस्थितियों व समस्याओं की पहचान के लिए समुदाय की सहभागिता से पी.आर.ए. किया गया। उपरोक्त सभी तरीकों से प्राप्त परिणामों के आधार पर ए.एम.ई. फाउण्डेशन ने बड़े पैमाने पर धान की खेती में सुधार की आवश्यकता को महसूस किया और किसानों के समूह के साथ एक संरचनात्मक क्षमता वर्धन प्रक्रिया के माध्यम से एस.आर.आई. को प्रोत्साहित किया।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन का यह दृढ़ विश्वास है कि सहभागी पद्धति, किसानों का क्षमतावर्धन व खेती सम्बन्धी समस्याओं का पता लगाने का एक प्रभावी तरीका है। यह किसानों के ज्ञान को विस्तार देने, उनकी सूक्ष्म दृष्टि को गहराई देने, अपने व्यवहार/मनोवृत्ति में परिवर्तन करने और प्रबन्धकीय सामर्थ्य को उन्नत करने के लिए आवश्यक है। इस उद्देश्य हेतु, ए.एम.ई. फाउण्डेशन ने किसानों की क्षमता अभिवृद्धि के एक पद्धति के तौर पर किसान स्कूल का प्रभावी ढंग से प्रयोग किया।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन का दृढ़ विश्वास सीखने की परिस्थितियां उत्पन्न करने में है। उसका मानना है कि इस तरीके से किसान कोई फसल प्रबन्धन का निर्णय करने से पहले फसल और खेत में मौजूदा अजैव व जैव तत्वों के आपसी सम्बन्धों/पारस्परिक क्रियाओं को समझने हेतु उत्साहित होता है। इसलिए किसान विद्यालय, खोज के द्वारा सीखने की एक प्रक्रिया है।

क्षेत्र में एस.आर.आई. पद्धति को प्रोत्साहित और स्थाईत्व प्रदान करने के लिए यह बहुत आवश्यक था कि किसानों के अतिरिक्त, कुछ ऐसे स्थानीय लोगों को प्रेरित किया जाये, जो कार्यक्रम में शामिल होकर कम से कम एस.आर.आई.. गतिविधियों को विस्तार देने का काम करें। अतः उन गांवों से स्थानीय स्वयंसेवकों की

पहचान करने के बाद सबसे पहले उनको इस विधि के साथ ही किसान विद्यालय की पद्धति के बारे में दो सप्ताह के आवासीय प्रशिक्षण के माध्यम से प्रशिक्षित किया गया। तत्पश्चात् वे ए.एम.ई. फाउण्डेशन के सहयोग से अपने गांवों में संचालित किसान विद्यालयों की देख–रेख करने लगे।

प्रत्येक गांव में 20 इच्छुक किसानों का एक समूह गठित किया गया एवं फसली मौसम मई–दिसम्बर, 2008 के दौरान किसान विद्यालयों को लम्बे समय तक चलाया गया। किसान विद्यालय प्रणाली में ''खोज के द्वारा सीखने की पद्धति'' के माध्यम से धान की खेती जानने हेतु किसान बेहद उत्साहित थे। विभिन्न सत्रों में, समूह सदस्य छोटे–छोटे विभिन्न अध्ययनों में शामिल होते थे, जो उनके ''करके सीखने'' के अनुभवों को बनाता था। प्रत्येक सत्र में, समूह सक्रियता से भाग लेता था और छोटे–छोटे विभिन्न अध्ययनों को संचालित करता था, जिससे उनके अन्दर आत्मविश्वास की भावना बलवती हुई।

वर्ष 2008 में जब कार्यक्रम का प्रारम्भ किया गया, तो धारवाड़ तालुक के चार गांवों से कुल 80 किसानों ने धान की खेती की इस नवीन पद्धति को अपनाया और इसमें उल्लेखनीय बदलावों को देखा। जैसे– बीज दर 30–35 किग्रा0 प्रति एकड़ से घट गयी, पंक्ति से पंक्ति व पौध से पौध की दूरी बढ़ गयी, खर–पतवार निकालने की नई मशीन का प्रयोग किया गया आदि। इनके परिणाम के तौर पर कल्लों की संख्या में वृद्धि हुई और उपज में 40 प्रतिशत अर्थात् 12 कुन्तल प्रति एकड़ की वृद्धि दर्ज की गयी जबकि किसानों द्वारा पहले से की जा रही धान की खेती में 8 कुन्तल प्रति एकड़ की दर से ही उपज प्राप्त होती थी।

एस.आर.आई. विधि से धान की खेती करने में 83 प्रतिशत बीज दर में कमी व इसी अनुपात में खेत में पौध संख्या कम होने के बावजूद भी 40 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि धान की उपज में वृद्धि मुख्यतः कल्लों की संख्या में वृद्धि से है। (133 प्रतिशत कल्ले, विशेषकर उपज देने वाले कल्लों में 171 प्रतिशत की वृद्धि) यहां पर जैव अभिकरणों और उच्च जैव सामग्री के प्रयोग से एस.आर.आई. ने उत्पादन लागत में 7 प्रतिशत तक की वृद्धि की थी। अभी तक, एस.आर.आई. खेतों से 40.34 प्रतिशत उपज वृद्धि और 06.32 प्रतिशत उच्च शुद्ध प्रतिफल की प्राप्ति उल्लेखनीय है।

किसान विद्यालयों ने सीमित अवधि में एस.आर.आई. अभ्यासों को अपनाने हेतु किसानों को उत्प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अतिरिक्त, नव शोधों से जुड़े मुख्य किसानों की प्रयोग करने की क्षमता को बढ़ाने का काम भी किया। पहले साल में प्राप्त हुए अन्य अच्छे परिणामों के साथ क्षेत्र में बड़े पैमाने पर एस0आर0आई विधि से खेती की जाने की संभावना है।

एस.आर.आई. की उन्नति के सोपान

एस.आर.आई. को बड़े पैमाने पर विस्तार देने के लिए बैठकें और प्रक्षेत्र दिवस आयोजित किये गये। इन गतिविधियों के दौरान प्रयासों के परिणामों पर चर्चा की गयी। क्षेत्र के किसानों ने इसमें सहभागिता की और उपरोक्त पद्धति के अच्छे प्रभावों के विषय में जानकारी प्राप्त की।

अतः इस प्रकार की गतिविधियों ने एस.आर.आई. विधि के बारे में अधिक संख्या में किसानों के बीच जागरूकता फैलाने में मदद की, तथापि एस.आर.आई. विधि से खेती किस प्रकार की जायें, इसमें बहुत मदद नहीं मिली। यह एक नयी पद्धति के रूप में सामने आई थी। अतः किसान इस पद्धति को लेकर बहुत अधिक विश्वस्त नहीं थे। इसके अतिरिक्त, एस.आर.आई. का सिद्धान्त लगभग भटका हुआ था, यह बहुत स्पष्ट नहीं था कि किस स्तर पर क्या करना होगा? इसलिए इस नवशोध गतिविधि को अपनाने के लिए किसानों को उत्प्रेरित करने हेतु एक सुनियोजित प्रयास व निरन्तर सहयोग की आवश्यकता थी।

वर्ष 2009 में देशपाण्डे फाउण्डेशन और डब्ल्यू0डब्ल्यू0एफ0 (World Wide Fund) के सहयोग से ए.एम.ई. फाउण्डेशन ने 25 गांवों के 1500 किसानों तक इस पद्धति का प्रसार करने के लिए रणनीति नियोजित की, जिसे ''एस.आर.आई. अभियान'' का नाम दिया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य न केवल किसानों को वरन् जिले के अन्दर इसके सभी सहयोगियों और प्रोत्साहनकर्त्ताओं को संवेदित करना था। 29 मई, 2009 को अभियान का औपचारिक रूप से उद्घाटन किया गया, जिसमें प्रमुख संस्थाओं जैसे – कृषि विभाग और कृषि विश्वविद्यालय के प्रतिनिधियों के साथ स्थानीय तौर पर निर्वाचित जनता के प्रतिनिधि और बड़ी संख्या में किसानों व स्वयं सेवकों ने सहभागिता की। इस कार्यक्रम को अधिक प्रचारित करने के लिए धारवाड़ मीडिया क्लब में प्रेसवार्ता भी की गयी। प्रिण्ट व इलेक्ट्रानिक दोनों मीडिया ने इस कार्यक्रम को अपने समाचार पत्रों और चैनलों में बृहद रूप से स्थान दिया।

कार्यक्रम को शुरू करने का समय पूर्व नियोजित था। अतः यह तय किया गया कि खरीफ की बुवाई से पहले इसे शुरू किया जायेगा ताकि किसान इस ऋतु में एस.आर.आई. अभ्यास का लाभ ले सकें।

इस गतिविधि के क्षेत्र में फैलाव की रणनीति के विभिन्न चरणों को परिभाषित किया गया।

खर–पतवार क्षेत्र में किसान का नवशोध

साइकिल वीडर में लोहे की पत्तियां लगाकर थोड़ा सा परिवर्तित करते हुए एक अतिरिक्त ''हो'' जोड़ दिया गया, जो गीली भूमि की परिस्थिति में जुताई करने में सहयोगी हुआ।

रोटोवीडर में निराई पहिये का आकार बड़ा हुआ और दुगुने छड़ को उसमें जोड़ दिया गया, (ठीक साइकिल वीडर की तरह), जो अधिक आसानी और अत्यधिक प्रभावी ढंग से क्रियाएं करने लगा।

कोनो वीडर का शंकु आकार गोल आकार में बदल गया, पहिये का आकार 3 इंच से बढ़कर 6 इंच डायामीटर हो गया। मौजूदा एक छड़ वाले हैण्डिल के स्थान पर दो छड़ वाला हैण्डिल हो गया, जिसको पकड़ना किसान के लिए आसान हो गया और आसानी से काम होने लगा।

अ) मानव संसाधन तैयार करना

इसके सभी पहलुओं के प्रारम्भ में मानव संसाधन तैयार करना ए.एम.ई. फाउण्डेशन की मूल रणनीति रही। इस रणनीति ने पाइलट फेज में भी किसानों के बीच एस.आर.आई. विधि प्रोत्साहन अभ्यास के विस्तार व स्थाईत्व के लिए किसान विद्यालय पद्धति व स्थानीय युवाओं को प्रशिक्षण के माध्यम से किसानों के बीच अच्छी तरह से काम किया और बेहतर परिणाम दिया। ए.एम.ई. फाउण्डेशन ने इसे ही आधार मानते हुए उन्नति की रणनीति तैयार की।

चयनित गांवों से अधिकाधिक खेतिहर युवाओं को लेते हुए कुल 70 युवाओं का चयन किया गया। उनको 3 दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम ''प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण'' (टी0ओ0टी0) के माध्यम से एस.आर.आई. अवधारणा, सिद्धान्त और अभ्यास पर प्रशिक्षित किया गया। एस. आर.आई. प्रेरक के नाम से प्रचलित इन स्वयंसेवकों को अभियान संचालित करने व किसानों को सहयोग उपलब्ध कराने हेतु भी प्रशिक्षित किया गया। मुख्यतः बुवाई के दौरान किसानों को निर्देशित करने की क्षमता विकसित करने जैसे बीज का चयन, बीज उपचार, बुवाई की क्षमता का प्रयोग करते हुए न्यूनतम बीज दर के प्रयोग आदि पर उपरोक्त प्रशिक्षण केन्द्रित था। इन प्रशिक्षित स्वयंसेवकों ने एस.आर.आई. विधि को जिले के सुदूर इलाकों व तीन तालुकों– हुबली, धारवाड़ और कालगहटगी के 25 गांवों में विस्तारित किया।

ब) अभियान

कार्यक्रम को बृहद् प्रचार–प्रसार देने हेतु दो–दो एस.आर.आई. प्रेरकों ने एक साथ मिलकर विभिन्न गतिविधियां प्रारम्भ कीं। उन्होंने चयनित गांवों में ग्राम सभाओं का आयोजन किया व इच्छुक किसानों से चर्चा कर उन्हें कार्यक्रम के लिए पंजीकृत कर लिया। एस.आर. आई.विधि के सिद्धान्तों और गतिविधियों के विषय में किसानो की समझ बनाई और उन्हें एस.आर. आई. पद्धति के लिए अपेक्षित क्षमताओं के ऊपर प्रशिक्षित भी किया। इसके साथ ही अभियान को गति

देने के लिए एस0आर0आई0 सम्बन्धित संदेशों के ऊपर दीवाल लेखन कर, बैनर को लगाकर और पर्चे बांटकर एक बड़े समूह के बीच इस विधि को प्रचारित किया गया। इस अवधि के दौरान उन्होंने प्रारम्भिक गतिविधियों जैसे निवेश हेतु संगठित करने एवं कार्यान्वित करने हेतु सुगमीकरण का कार्य भी किया।

स) प्रक्षेत्र सहयोग

अभियान की अवधि समाप्ति के बाद, एस.आर.आई. प्रेरकों ने किसानों को उनकी बुवाई की गतिविधियों में भी सहयोग किया, उन्हें सही तरीके अपनाने में मदद की। इसमें किसानों द्वारा एस.आर.आई. बुवाई गतिविधि अपनाने हेतु प्रक्षेत्र सहयोग की निर्णायक भूमिका के साथ बीज का चयन व बीज उपचार में सहयोग भी शामिल है। बुवाई अवधि के दौरान किसानों की सहूलियत के लिए कृषि विभाग से 57 विकसित सीड ड्रिल मशीनें भी उपलब्ध कराने में सहयोग किया गया, साथ ही 25 किग्रा0 जिंक सल्फेट, 200 किग्रा जैव–अभिकर्ता जैसे अज़ोस्प्रीलियम, पी0एस0बी0 और बीज शोधन हेतु 20 ग्राम ट्राइकोडर्मा भी कृषि विभाग से उपलब्ध कराया गया। यह सभी कुछ उन किसानों को उपलब्ध कराया गया था, जिन्होंने सूक्ष्म पोषक तत्वों के प्रबन्धन पर छोटा परीक्षण किया था।

एस.आर.आई. प्रेरकों ने मुगुड धान शोध केन्द्र के वैज्ञानिकों के साथ सलाह–मशविरा कर 67 किसानों के खेत के एस.आर.आई. चक में धान की फसल के साथ सूर्यमुखी को शामिल करते हुए खर–पतवार प्रबन्धन के परीक्षण को प्रोत्साहित किया।

अभिसरण कार्यक्रम के माध्यम से एस.आर.आई. विधि को उन्नति प्रदान करना

इस नवीन पद्धति को नये क्षेत्रों में फैलाने एवं उसे उन्नति प्रदान करने के लिए उत्सुक ए.एम.ई फाउण्डेशन ने अलग प्रकार की रणनीति नियोजित की। उन क्षेत्रों में, जहां ए.एम.ई. फाउण्डेशन जमीनी स्तर पर जुड़कर काम नहीं कर रही थी, वहां इसने मुख्य संस्थाओं जैसे– कृषि विभाग से सम्बन्ध बनाना प्रारम्भ किया, जो क्षेत्र में बेहतर कृषिगत गतिविधियों को विस्तारित करने हेतु एक अधोहस्ताक्षरित संस्था थी। यहां पर कर्नाटक के हसन जिले के तालुक सकलेशपुर में किये गये एक अभिसरण कार्यक्रम का अनुभव उद्घृत है –

हसन में कृषि विभाग ने जल्दी ही एस.आर.आई. विधि का प्रोत्साहन प्रारम्भ किया था। वर्ष 2006–07 में क्षेत्र में कुछ किसान एस.आर. आई. विधि से खेती करने के लिए तैयार हुए, लेकिन विभाग से निरन्तर सहयोग न मिलने के कारण कार्यक्रम में स्थाईत्व की कमी आई एवं किसानों का एस.आर.आई. खेती से मोह भंग हो गया और वे पुनः अपनी पुरानी खेती की ओर वापस लौट गये। वर्ष 2009 में, ए.एम.ई. फाउण्डेशन ने तकनीकी सहयोग प्रदान करने हेतु कृषि विभाग के साथ एक अभिसरण कार्यक्रम किया। कृषि विभाग ने ''संदूक के बाहर पहुंच'' की अवधारणा को अपनाया, जहां ऐसे युवाओं, स्थानीय लड़कों को मानदेय पर लिया गया, जो अपने घर पर खेती का काम करते थे। इन स्वयंसेवकों को एस.आर.आई. पद्धति के एक्सपोजर के माध्यम से प्रशिक्षित किया गया और विशेषकर नर्सरी तैयार करने व रोपण क्रियाओं का प्रक्षेत्र प्रदर्शन

कराया गया। आत्मा कार्यक्रम के अन्तर्गत 10 गांवों के लगभग 40 किसानों ने ए.एम.ई. फाउण्डेशन के साथ अपनी तकनीकी कमियों को दूर करते हुए एस.आर.आई. तकनीक अपनाई। इस नियोजित रणनीति के साथ, वर्ष 2009 में एस.आर.आई. कार्यक्रम की पहुंच लगभग 1012 किसानों तक हो गयी। लगभग 806 किसानों ने इसे वर्षा आधारित परिस्थितियों में अपनाया जबकि शेष ने इसे गर्मी ऋतु में अपनाया। लगभग 130 एकड़ जमीन पर एस.आर.आई. विधि से खेती की गयी। बाद में बिलकुल यही तरीका अपनाते हुए ए.एम.ई. फाउण्डेशन ने कोलार जिले में स्थानीय समुदायों के साथ काम किया और एस.आर.आई. विधि से खेती करने का मार्ग प्रशस्त किया।

गतिविधि के विस्तार को प्रभावी बनाने वाले कारक

किसी भी गतिविधि का विस्तार एक आसान प्रक्रिया नहीं है। बहुत से ऐसे कारक हैं, जो कार्यक्रम या गतिविधि के विस्तार के तरीके को प्रभावित करते हैं। धारवाड़ और उसके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर एस.आर.आई. विधि के विस्तार को प्रभावशाली बनाने वाले कुछ कारकों की पहचान की गयी, जो निम्न हैं –

- **एक गतिविधि के अर्न्तनिहित लाभ**
  यदि उचित ढंग से खेती की जाये तो एस.आर.आई. विधि के बहुत से अर्न्तनिहित लाभ हैं, जैसे – निवेश एवं उनके लागत को घटाना, उपज व प्राप्ति को बढ़ाना। जिन किसानों ने पहले साल में इसके लाभों को देखा, वे स्वतः दूसरे किसानों तक इसके लाभप्रद अनुभवों का आदान–प्रदान अपनी जिम्मेदारी मानने लगे और उन्होंने अन्य किसानों व लोगों को इसे अपनाने के लिए उत्प्रेरित किया।
- **मानव संसाधन बनाने के माध्यम से निरन्तर सहयोग**
  प्रथम वर्ष में मिलने वाले लाभ के पीछे किसान विद्यालय के माध्यम से किसानों को दिया जाने वाला अनवरत सहयोग बहुत मायने रखता है। पूरे ऋतु भर होने वाली प्रक्रिया के कारण किसान को प्रत्येक स्तर पर मिलने वाले निर्देशन से बेहतर परिणाम प्राप्त हुआ। इस प्रक्रिया से किसानों के अन्दर नवीन गतिविधियों को अपनाने हेतु आत्म विश्वास भी बढ़ा। इस विधि की प्रसार अवधि के दौरान स्थानीय स्वयंसेवकों के माध्यम से उपलब्ध कराये गये सहयोग ने भी किसानों द्वारा इस प्रक्रिया को अपनाने में निर्णायक भूमिका निभाई।
- **बेहतर परिभाषित रणनीति**
  इस गतिविधि को बड़े पैमाने पर विस्तार देने के लिए जो कुछ भी अच्छाईयां हो सकती हैं, उनके लिए कड़ाई से स्वयं द्वारा तैयार की गई बेहतर योजना व रणनीति महत्वपूर्ण होगी। विभागीय अनुभवों से यह बहुत स्पष्ट भी हो गया था, जहां नियोजित ढंग से रणनीति न बनी होने के कारण एस.आर.आई. विधि शुरूआत में अपनाने के बाद छोड़ दिया गया।
- **संस्थागत अभिसरण**
  इस गतिविधि को प्रोत्साहित करने में भिन्न–भिन्न संस्थाओं के बीच समन्वयन व अभिसरण के बहुत से प्रयासों ने सहायता प्रदान की। मुख्य धारा में शामिल संस्थाओं जैसे– कृषि विभाग प्रारम्भ से शामिल थी, जिसने बाद में अपने सहयोग से इस विधि को उन्नति प्रदान करने में मुख्य भूमिका निभाई। संस्थागत जुड़ाव और उनका सहयोग इस कार्यक्रम के स्थाईत्व में निर्णायक रहा।

एक अभियान के रूप में संवेदीकरण एवं बड़े पैमाने पर चलाये गये जागरूकता कार्यक्रम ने क्षमता अभिवृद्धि प्रक्रिया जैसे किसान विद्यालय को सुदृढ़ बनाने में सकारात्मक भूमिका निभाई।

आभार

इस कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु क्षेत्र के किसानों और ए.एम.ई. फाउण्डेशन धारवाड़ के कार्यकर्त्ताओं का धन्यवाद। डा0 अरूण बालामाटी द्वारा समग्र दिशा निर्देशन एवं देशपाण्डे फाउण्डेशन व डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ द्वारा समन्वय सहयोग के लिए आभार।

क्षेत्रीय कार्यक्रम अधिकारी
ए०एम०ई० फाउण्डेशन, 39, 1st मेन, 2nd क्रास
चन्ना बासावेश्वर नगर, धारवाड़, 580 007
ईमेल : amefdwd@yahoo.com

Sustainable Gains & Scaling up
LEISA INDIA, Vol. 11, No.4, Pg. # 15-17, Dec. 2009

वेबसाइट पर लीज़ा
www.leisaindia.org

लीज़ा गतिविधियों पर सीखने एवं अनुभव आदान– प्रदान हेतु एक वेबसाइट

मुख्य आकर्षण

- लीज़ा आधारित अनुभवों का बांटने की जगह
- किसानों द्वारा की जा रही लीज़ा गतिविधियों को जानने का एक स्रोत
- लीज़ा इण्डिया पत्रिकाओं का एक अभिलेख– अंग्रेजी व अन्य क्षेत्रीय अंक (तमिल, कन्नड़, हिन्दी, उड़िया और तेलगु)
- लीज़ा गतिविधियों से सम्बन्धित फोटो व वीडियो
- लोगों द्वारा अनुसरित लीज़ा गतिविधियों की सफल कहानियाँ

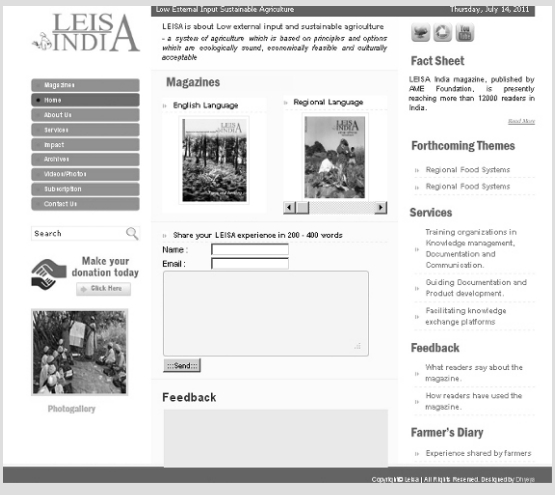

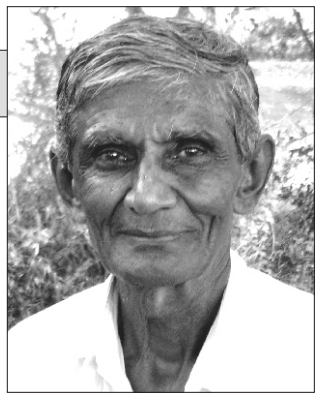

महिला व खाद्य सम्प्रभुता

एल० नारायण रेड्डी

पुराने जमाने में पुरूष खाने की जरूरतें पूरी करने के लिए जंगलों में जाकर जानवरों का शिकार करते, जंगली कन्द व फल इकट्ठा करते थे और महिलाएं अपने घर के पिछवाड़े कन्द व खाद्य फसलें उगाया करती थीं। इसलिए यह कहना उचित है कि महिलाओं ने सबसे पहले फसल उगाया। आज भी, उन स्थानों पर जहां, कृषिगत क्रियाओं में मशीनीकरण की प्रधानता नहीं है, 60 प्रतिशत खेती महिलाओं के द्वारा ही की जाती है। महिला ही अपने परिवार की खाद्य आवश्यकताओं को समझती है और तद्नुरूप फसल चयन करते हुए यह नियोजित करती है कि परिवार की पूरे साल की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किस तरह की फसल उगाई जाये? मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरे पिताजी बरसात के मौसम में रागी के साथ अन्तः फसल के रूप में सरसो उगाने के पक्ष में कभी भी नहीं रहे, लेकिन मेरी मां सरसो तेल की अनिवार्य आवश्यकता को अच्छी तरह से समझते हुए सरसो को अन्य बीजों में मिला देती थी। हालांकि, मेरे पिताजी जब खेत में रागी के बीज के साथ सरसो पाते थे, तो उनके ऊपर बहुत तेज नाराज होते थे। बहुत सी बुद्धिमान महिलाएं केवल बाजार आधारित खेती न कर अपने परिवार की नियमित आवश्यकताओं को पूरा करने वाली फसलों की खेती भी करती हैं और इसके लिए वे अपने घर के पुरूषों को तैयार भी कर लेती हैं।

बहुत से गांवों में यह एक नियमित अभ्यास के तौर पर है कि महिलाएं नहाने–धोने के बाद बेकार पानी का प्रयोग कर अपने घर के पिछवाड़े सब्ज़ियां, सहजन, पपीता और केला के कुछ पौधे तैयार कर लेती हैं। इससे, न केवल उन्हें अपने परिवार के लिए प्रचुर मात्रा में सब्ज़ियां मिल जाती हैं, वरन् वे आस–पड़ोस मे भी बाँटती हैं और बहुत बार वे सब्ज़ियां बेच भी लेती हैं। हाल के वर्षों में शहरी क्षेत्रों में घर के पिछवाड़े व छत पर बागीचा तैयार करना बेहद लोकप्रिय हो चला है। विशेषकर केरल राज्य के त्रिवेन्द्रम जिले में लगभग 25 प्रतिशत लोग अपने छतों पर बागीचा तैयार कर रहे हैं, जहां वे 6–7 प्रजातियों की ताजी हरी सब्ज़ियां जहरीले कीटनाशकों का प्रयोग किये बिना उगा रहे हैं। परिणामतः सब्ज़ियों को खरीदने में व्यय होने वाला उनका पैसा, बाजार तक जाने का समय व श्रम बचता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि बाजार की सब्जियों के ताजे व शुद्ध होने की कोई निश्चितता नहीं होती, जबकि घर पर उगने वाली सब्ज़ियां ताजी व शुद्ध होती है। अतः उनके स्वास्थ्य पर भी दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। आम तौर पर शहरी क्षेत्र से लगभग 30 किमी0 दूर परिधि में गन्दे नाले के पानी से सिंचाई कर व उसी पानी से धुल कर आई सब्ज़ियां बाजार में रहती हैं। इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि बाजार से लाई गयी सब्ज़िया कितनी गुणवत्ता पूर्ण होगीं।

शहरी क्षेत्रों के पास रहने वाली महिलाएं आस–पास के परिवारों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सकती हैं और इस तरह की एक व्यवस्था बना सकती है कि सब्ज़ियां उगायें और उन परिवारों को सप्ताह में कम से कम दो बार सब्ज़ियां पहुंचायें। इस प्रकार किसान का भी बाजार जाने में लगने वाला समय और पैसा दोनों बचेगा। एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि इस तरह की प्रक्रिया अपनाने से किसानों और शहरी क्षेत्रों में रहने वाले परिवारों के बीच बराबरी का एक सम्बन्ध विकसित हो सकता है। लोग सप्ताहान्त पर अपने बच्चों के साथ किसानों के खेत में जायेगें और उनके साथ काम कर अपने घर के पिछवाड़े या फिर छत पर सब्ज़ियां उगाना सीख सकते हैं।

परम्परागत सब्जी बीजों को उनके पोषक मूल्यों एवं स्वाद के लिए संरक्षित व सुरक्षित रखना बहुत ही महत्वपूर्ण है और महिलाएं इस काम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। अब बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां आनुवांशिक संशोधित जैसे बीटी बैगन, बीटी भिण्डी आदि के बीज निकाल रही हैं, जो बुवाई करने में बहुत विश्वसनीय नहीं होती। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी कम्पनियां भी होती हैं, जहां से किसी भी समय किसान आवश्यकता पड़ने पर बीज खरीद सकते हैं, परन्तु ये बीज निम्न गुणवत्ता के एवं संकर किस्म के होते हैं। इसलिए, किसानों के लिए यह अधिक सस्ता व सुरक्षित होगा कि वे अपनी स्थानीय बीजों को सुरक्षित रखें और हानिकारक जी0एम0 बीजों को अस्वीकार करें। ऐसा करते हुए ही हम अपने देश की जैव विविधता को भी सुरक्षित कर सकेगें।

यह बात समझ से परे है कि बीटी बैगन को समुदाय के बीच में लाने के लिए इतनी जल्दीबाज़ी क्यों की गयी? किसानों ने क्यों अपनी रूचि का परित्याग करते हुए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा लाये गये बीटी बैगन को प्राथमिकता दिया। यह सोचने वाली बात है कि जब हमारे यहां के एक बैगन से 1500 बीज प्राप्त हो सकते हैं, तो हम क्यों बैगन की एक अपरिचित और महंगी प्रजाति के बीज खरीदें? जबकि हमारे पास खुद भारत के प्रत्येक जिले में बैगन की 10–15 प्रजातियां विभिन्न व्यंजनों के लिए मौजूद हैं, ऐसे में विभिन्न व्यंजनों के लिए हमारी आवश्यकता को बीटी बैगन किस प्रकार पूरा कर सकता है? ■

श्री निवासपुरा, वाया मारेलानाहाली
हनाबे पोस्ट, डोडाबल्लापुर तालुक,
कर्नाटक, भारत
मोबाइल : 09242950017, 09620588974

Women and food sovereignty
LEISA INDIA,Vol. 11, No.1, Pg. # 34, Sept 2009,

विविधीकृत खेती तंत्र-अतीत से सीख कर भविष्य की ओर अग्रसर

खेती को शामिल करते हुए संस्कृति और प्रकृति दोनों में विविधता बड़ी तेजी से विलुप्त हो रही है, लेकिन अभी भी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है। लाभ की सच्चाई और कमजोर पारिस्थितिकी में एक विश्वसनीय विकल्प के तौर पर समुदाय विविधता को संजो रही है। यह लेख इस मुद्दे पर केन्द्रित है कि उपलब्ध और समर्थ विकल्प एक अवरोध की तरह हैं।

अर्धेन्दु शेखर चटर्जी

पिछले 50 वर्षों के दौरान, हमने संस्कृति व प्रकृति में चेतावनी के स्तर तक विविधता को खोया है और इसमें खेती भी शामिल है। प्रारम्भ में यदि यह स्पष्ट था कि सड़क व रेलवे के लिए हरीतिमा आवश्यक है, तो 1960 के मध्य में अधिक मात्रा में कृत्रिम खादों एवं कीटनाशकों का प्रयोग करते हुए धान व गेंहूं की एकल खेती को प्रोत्साहित किया गया। परिणामस्वरूप, मिट्टी जो सूक्ष्म जीवों व सूक्ष्म वनस्पतियों का भण्डार थी, वह भण्डार खाली हो गया अर्थात् नष्ट हो गया। क्योंकि पानी भी प्रदूषित हो गया था, जिसके कारण मछलियों, मेढक, घोंघा, झींगा, केकड़ा की सैकड़ों प्रजातियां, जो धान के खेतों और जल स्रोतों के आस–पास रहती थीं, वे नष्ट हो गयीं। गौरतलब है कि ये गरीब ग्रामीण जनता के लिए प्रोटीन का एक समृद्ध स्रोत भी थीं। मशीनीकरण के आगमन के साथ ही वृक्षों व लताओं में कमी आई, क्योंकि खेतों के बीच में खड़े ये पेड़ ट्रैक्टर व पावर टीलर के रास्ते में अवरोध थे, इनकी वजह से वे अपना काम आसानी से नहीं कर सकते थे। अतः वे कटते गये। इसी प्रकार, अक्सर सक्रिय सहभागिता और कई बार राज्य सरकारों द्वारा दबाव बनाकर आवश्यकता के लिए और संभावनाओं को देखते हुए मजबूत काठी वाले बैल व भैंसों को विकसित किया गया, जिसकी वजह से स्थानीय प्रजाति के विविध जानवर विलुप्त होते गये। आयातित पौधों व जानवरों के आनुवांशिक गुण सब्ज़ियों व फलों के उदाहरण बने। चमत्कारी विज्ञापनों के साथ ही छूट व ऋण के माध्यम से इसे बढ़ावा दिया गया। यहां पशुधन का हवाला दिया जा सकता है, किसान परम्परागत प्रजाति के पशु नहीं खरीद सकते। विदेशी मज्जायुक्त लकड़ी की प्रजाति के पौधों को प्रारम्भ में छोटे स्तर पर वन विभाग ने उसर भूमि पर लगाने को प्रोत्साहित किया, परन्तु धीरे–धीरे उसने खेती योग्य जमीन, गीली जमीन, और जंगल सभी को आच्छादित कर लिया। कुछ समय बाद यह बहु–उपयोगी प्राकृतिक जंगलों का स्थानापन्न बन गया। आनुवंशिकता, प्रजातियों और पारिस्थितिकी के स्तर पर विविधता विकास की मुख्य धारा को एक धमकी साबित हो रही है। एक राष्ट्रीय जैव–विविधता एक्शन प्लान बनाया गया है, लेकिन वह भी मृतप्राय पड़ा हुआ है।

विविधीकृत खेती तंत्र कृषि विभाग का एक लक्ष्य रहा है, लेकिन यथार्थ यह है कि ''कम लाभ वाले खाद्य फसलों का उगाना बन्द करके शहर में सुपर मार्केट / निर्यातकों को देने हेतु या फिर फुटकर में बेचने हेतु फूल, फल, मसाले आदि को उगायें।'' यह विविधता न तो स्वयं के लिए पर्याप्त है, और न ही इससे प्रदूषण घटाया जा सकता है और न मिट्टी और पशुधन के क्षरण को ही रोका जा सकता है।

तब हम विविधता कहां प्राप्त कर सकते हैं ?

विविधता बहुत अधिक मात्रा में लुप्त हो रही है (अथवा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों का खिलौना है, जो नई संकर प्रजाति को जन्म दे रही है और इसके पेटेण्ट के अधिकार का दावा करती है।) ऐसे में लघु, सीमान्त किसानों के पास क्या शेष बच रहा है, विशेषकर उनके पास जो अधिक सूखा, अधिक जल जमाव अथवा सुदूरवती क्षेंत्रों में रह रहे हैं और जो मुख्य तौर पर अपने लिए खाद्य फसलें उगाते हैं।

परम्परागत जनजातियां भारत के पर्वतीय क्षेत्रों मुख्य तौर पर उत्तरी–पूर्वी भारत, पूर्वी या पश्चिमी घाट और हिमालयन मध्य क्षेत्र के जंगलों में निवास करती हैं। ये अभी भी खेती में झूम / पोडू / काटने अथवा जलाने की पद्धति को अपनाती हैं। इन सभी खेती पद्धतियों में 15–20 या उससे भी अधिक अनाज, फली, लतादार, तिलहन और कन्द वाली फसलें एक दूसरे के साथ टुकड़े में लगाई जाती हैं ताकि उनके बीच में वन्य क्षेत्र स्पष्ट रहे। किसान जंगली शाक, कन्द और मशरूम आदि की पैदावार भी लेते रहते हैं। 3–4 साल में, जब पेड़ बड़े होने लगते हैं, तब ये किसान उस जगह को छोड़ देते हैं और एक नये जगह की तलाश कर उस पर वृक्षारोपण करते हैं। यह खेती अब कम उत्पाद देने वाली हो गयी है, क्योंकि जगह का मिलना दूभर हो गया है और किसान घूम–फिर कर उसी जमीन पर केवल 5–6 वर्षों में या इससे भी कम समय में वापस आ जा रहे हैं जबकि पहले 12–15 वर्षों में एक चक्र पूरा होता था। वन प्रशासन भी इन लोगों को बाहर करने के लिए तमाम हथकण्डे अपना रही है अथवा इनकी खेती को अनन्नास, केला, नीबू वंश के फलों आदि की एकल खेती में बदल रही है। भारत, नेपाल, थाइलैण्ड, कम्बोडिया और वियतनाम के किसान बड़े व छोटे आकार के मोटे अनाजों, चावल, राजमा, अरहर, चना, मटर, लबलब बीन्स, लोबिया बीज और राजमा बीन्स प्रजातियों के साथ ही कद्दू वर्गीय बहुत सी प्रजातियों का पोषण करते हैं, उन्हें उगाते हैं। सूरन, अरवी आदि जंगल से भी मिलते हैं और इनकी खेती भी करते हैं। ऊंची भूमि पर चावल, मक्का, अनाज, चौलाई और फाफड़ के परम्परागत प्रजातियों की खेती प्रायः मुख्य खाद्य फसल के तौर पर करते हैं। अधिकांश पेड़ों की पत्तियां खाने अथवा चारे के रूप में इस्तेमाल करते हैं। यह समुदाय कोई मसाला या सब्जी के तेल का प्रयोग मुश्किल से करते हैं। सामान्यत खाना कच्चा या उबाल कर अथवा भूनकर खाते हैं।

पहाड़ी और मैदानी दोनों क्षेत्रों में अभी भी गृहवाटिका में विविधीकरण की अवधारणा मौजूद है। गृहवाटिका सामान्यतः छोटे होते हैं और प्रथमतया अपने उपभोग के लिए होते हैं। प्रायः गृहवाटिका की देख–रेख महिलाओं और बच्चों द्वारा की जाती है और इसमें बोई जाने वाली सब्ज़ियां बाजार आधारित न होकर स्वयं की पसन्द की होती हैं। एक गृहवाटिका में, सब्ज़ियां, सजावटी पौधे, खाद्य और

औषधीय जड़ी–बूटियां, फल और अन्य पेड़, पालतू पशु, चिड़ियां और कभी–कभी मधुमक्खियां, मेढक और मछली आदि भी पाली जाती हैं।

पश्चिम बंगाल के एक विशिष्ट गृहवाटिका में फलों के छोटे पेड़ जैसे– अमरूद, नीबू, केला, चकोतरा, नारियल, सुपारी आदि पाये जाते हैं। सूखे क्षेत्रों में शरीफा, बेर, अन्ननास अधिक पाये जाते हैं। आम, रामफल (hog apple), चलता (elephant apple) (कलकत्ता में प्रचलित स्थानीय नाम), बेल आदि विशाल भूखण्ड पर पाये जाते हैं। बाड़े के लिए, कांटेदार अथवा बिना कोंपल वाली प्रजातियों को प्राथमिकता दी जाती है। फूल वाले पौधे जैसे– जवांकुसुम, कनेर, nycanthes, कडुवे पत्तों वाले पौधे जैसे– वसक, निर्गुण्डी, कांटेदार कैक्टस आदि सामान्यतः बाड़े के तौर पर लगाये जाते हैं। नमी वाले क्षेत्रों में erythrina, lannea, coromandelica, सहजन या moringa का ठूंठ बाड़े के बाद लगा दिया जाता है। sesbania, grandiflora, सुपारी के पेड़ आदि बाड़े के समानान्तर लगाये जाते हैं। रतालू या सोर्ड बीन्स को उनके सहारे ऊपर चढ़ा दिया जाता है। लबलब कद्दू की खेती करने वाली अथवा जंगली प्रजातियां, रतालू, राहुरतन फली, करैला आदि भी बाड़े के भाग के तौर पर इस्तेमाल की जाती हैं। पत्तेदार सब्ज़ियां जैसे – चौलाई की बहुत सी प्रजातियां, बसेला, मीठी या कड़वी जूट पत्तियां, अम्भार की खट्टी पत्तियां या केनाग, करी पत्ता, सहजन, टावो पत्तियां आदि सामान्य तौर पर लगाई जाती हैं। कद्दू की बहुत सी प्रजातियों के पत्ते, फलियों के पत्ते भी खाये जाते हैं, लेकिन यह क्षेत्र के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं – इनका बड़े पैमाने पर प्रयोग केरला, पश्चिम बंगाल, आसाम, उत्तरी–पूर्वी भारतीय राज्यों में होता है। कोहड़ा, खरबूजा, कद्दू, बैगन, टमाटर, भिण्डी, पोल व बुश बीन्स आदि सब्ज़ियों को प्राथमिकता दी जाती है। अरवी और शकरकन्द, ऐलीफैण्ट फुट रतालू, कोकोयम, कसावा, लतादार रतालू, अरारूट्स आदि गृहवाटिका में लगाये जाने वाले प्रमुख कन्द हैं, जिन्हें सब्ज़ी के तौर पर उपयोग किया जाता है। उनके आंगन, घर के पिछवाड़े, गृहवाटिका में बहुत सी पारम्परिक प्रजातियां विद्यमान रहती हैं। मिर्च, अदरक, हल्दी, गुच्छेदार प्याज, तुलसी की बहुत सी प्रजातियां, पुदीना, नीबू घास और अन्य सुगन्धित पौधे अक्सर बड़े पेड़ों / झाड़ियों के छाये में उगाये जाते हैं। बहुत से परिवार एक छोटा मछली तालाब, कुछ बकरियां, सुअर, मुर्गे, बत्तख आदि (मुख्यतः देशी प्रजाति) रखते हैं, जो फसल अवशेषों एवं घर से निकले अपशिष्टों को खाकर पलते हैं। बड़े पैमाने पर किसान गाय व भैंसों को भी रखे हुए हैं। शहरी उपान्त क्षेत्रों में गृहवाटिका बड़ी तेजी से केला, पपीता, नीबू, अमरूद, नारियल आदि के एकल बागीचे में परिवर्तित हो रहे हैं या फिर छोटी अवधि के गूदेदार लकड़ियों वाले वृक्ष जैसे – यूकिलिप्टस, कैसुरिना, कीकर आदि लगाये जा रहे हैं। हाल में, औषधीय पौध की एकल संस्कृति, बायो डीजल पौधरोपण या एकल प्रजाति के फलदार वृक्षों के रोपण पर कुछ दूसरी संस्थाओं द्वारा छूट प्रदान किये जाने से परम्परागत जैव विविधता पूर्ण गृहवाटिका का स्वरूप तेजी से बदल रहा है।

बाढ़ / सूखा प्रभावित क्षेत्रों में छोटा खेत वह तीसरा क्षेत्र है, जहां जैव विविधता को बनाये रखने की आवश्यकता है। क्योंकि खेती में बढ़ती बाहरी लागत, चढ़ता–उतरता बाजार भाव, संकर बीज आधारित पैकेज आदि सभी मिलाकर इन आपदा प्रभावित क्षेत्रों में खेती को असफल बना रहे हैं। जैव विविधता मुख्य रूप से जलीय पौधों में है, जो स्वयं उगती हैं और धान के खेतों अथवा नम जमीनों से उपज प्राप्त कर उनका इस्तेमाल भोजन, चारे या औषधीय पौधों के तौर पर किया जा सकता है।

समुद्र तटीय भारत के धान वाले खेतों में 30–40 प्रकार की ऐसी जड़ी–बूटियां बड़ी मात्रा में मिलती हैं, जिनका उपयोग खाने में किया जाता है। कलमी, थनकुनी, ब्राम्ही, सुसनी, कनचिर, कुलेखरा आदि साग–सब्ज़ियां व जड़ी–बूटियां पश्चिम बंगाल के कुछ शहरी बाजारों तथा कस्बों में बिकती भी हैं। बरसात के मौसम में सभी जलक्षेत्र और धान के खेत आपस में जुड़ जाते हैं, क्योंकि तब कृषिगत रसायनों का प्रयोग कम होता था। अतः मछलियों (विशेषतः कीड़ों को खाने वाली कीचड़ मछलियां), मेढकों, घोंघा, केकड़ा, झींगा के बच्चों की एक विशाल श्रृंखला उनमें होती थी या फिर खेतों के माध्यम से बहकर आ जाती थीं। किसान इनको पकड़ने के लिए एक विशाल जाल (अधिकांशतः बांस का पिंजरा) तैयार करते थे। कुछ तो तुरन्त उपयोग कर लेते थे और कुछ को बाद में उपयोग करने के लिए मर्तबान, नाली या तालाब में पालते थे। बहुत सी जलीय घासें जैसे शैवाल, अजोला आदि बत्तख या सुअर के खाने के तौर पर इस्तेमाल की जाती हैं। कुछ मल्चिंग अथवा कम्पोस्ट सामग्री के रूप में प्रयोग की जाती हैं, जबकि कुछ ईंधन के लिए इस्तेमाल की जाती हैं। तालमखाना, कुमुदनी, कमल आदि की खेती खाद्य पौधों के रूप में जल वाले क्षेत्रों की जाती है और इनके बीज, तना आदि स्थानीय तौर पर उपभोग किये जाते हैं और निकटवर्ती बाजारों में बेचे भी जाते हैं।

मुख्य फसल धान की ऐसी बहुत सी प्रजातियां हैं, जो गहरे पानी, अम्लीय मिट्टी, देर से बारिश होने आदि की परिस्थितियों में बोई जाती हैं। धान की प्रजातियां उनकी सुगन्ध, आकार, संरचना, स्वाद आदि के आधार पर भी चयनित की जाती थीं। यहां तक कि बंगाल के सुन्दरबन डेल्टा और तटीय पूर्वी मिदनापुर जिले के छोटे किसान अब भी धान की 150–180 प्रजातियों के बारे में जानते हैं और उनका प्रयोग करते हैं। धान के पौधे का प्रत्येक भाग बहुउपयोगी है अथवा उत्पादन के बाद सभी भाग का उपयोग खाने अथवा चारे के रूप में मूल्यवान है। धान का पुआल छत बनाने वाली सामग्री, रस्सी, धान रखने वाले कोठार (धानी), जाड़ों में जानवरों के बिछावनी, मशरूम की खेती में नीचे बिछाने हेतु, जानवरों का चारा, पैकिंग सामग्री, निर्माण सामग्री आदि के तौर पर इस्तेमाल होता है। धान की भूसी (छिलका) का प्रयोग ईंधन, अण्डा सेने हेतु उष्मायन सामग्री, मल्चिंग या मृदा सुधार सामग्री (विशेषकर जले हुए खेत में), बर्तन रंगने हेतु उपकरण आदि के तौर पर किया जाता है। टूटे हुए चावल और चावल कन (भूसी) मछली, बत्तख, चूजा, सुअर के भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है। चावल के आटे से विभिन्न प्रकार की खाने की सामग्री बनाई जाती है, मुरमुरा, भूजा, चिउड़ा आदि अभी भी बंगाल में प्रचलित नाश्ते हैं। चावल से बनी शराब किसानों द्वारा पसन्द की जाती है। यद्यपि राज्य सरकार द्वारा शराब बनाने को अवैध घोषित करते हुए इस पर प्रतिबन्ध लगाने के कारण यह तकनीक विकसित नहीं हो पाई।

वर्षा आधारित / कम वर्षा वाले क्षेत्रों में मक्का, ज्वार, बाजरा, मडुवा अभी भी मुख्य खाद्य फसल के रूप में विद्यमान हैं (यद्यपि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से चावल व गेंहूं बहुत से घरों की रसोई में प्रवेश कर चुका है)। मैदानी सूखा क्षेत्रों में मुख्य दलहन अरहर, उर्द,

चना, खेसारी और पर्वतीय सूखा क्षेत्रों में मुख्य दलहन भोटिया (राइस बीन) को एक साथ अथवा अनाज के साथ परिवर्तित चक्र में उगाया जाता है। रामतिल, तिल, कुसुम, सरसों बीज, अरण्डी, मूंगफली आदि मुख्य तिलहन बीज हैं।

शताब्दियों से मध्य भारत और पर्वतीय क्षेत्रों में छोटे किसान मिश्रित खेती करते आ रहे हैं। साल में केवल एक बार जमीन की जुताई करके वे जल्दी पकने वाले, देर से पकने वाले और अधिक देर से पकने वाले अनाजों, सब्ज़ियों, मसालों आदि की अन्तः खेती करते थे। आज कुछ ही हैं, जो इस प्रणाली को बीज व सम्बन्धित जानकारियों के साथ संजोये रखे हैं। सूखाग्रस्त क्षेत्रों में खेतों, बांधों और उसके चारों तरफ दिखने वाले पेड़ सामान्यतः बबूल, पलाश (Flame of the forest), तेन्दू, पनई ताड़, खजूर आदि के होते हैं। सामान्यतः बहुतायत में कंटीली और गुच्छेदार झाड़ियां जैसे – अरण्डी, विभिन्न प्रकार के दूधिया रसों वाले कैसिया पौधे (प्रायः जहरीले / औषधीय), ऐगेव आदि साथ–साथ होते हैं, इनके साथ घासों की एक विशाल श्रृंखला होती है।

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में, कुछ खाने वाली घासें जैसे– जंगली चौलाई, लैम्बस क्वार्टर, कुन्दरू आदि की सीमित उपलब्धता रहती है। छोटी जोत वाले किसानों की मुख्य रणनीति ऐसे जानवरों / पक्षियों को बढ़ाना है ताकि वे न्यून गुणवत्ता वाले पेड़–पौधों को मानव खाद्य में बदल सकें। सूखा क्षेत्रों में कीड़ों और छोटे रेंगने वाले जीवों की एक विशाल श्रृंखला भी खाने और खिलाने के तौर पर प्रयोग की जाती है। उन जगहों पर, जहां कहीं भी जंगल हैं, वहां पर निम्न आय वर्ग वाले परिवारों का भोजन मुख्यतया जड़ों, कन्द, मशरूम, पेड़ों की पत्तियों, फूलों, फलों, बीजों आदि के संपूरक आहार पर निर्भर है।

हमारी दोषपूर्ण प्राथमिकता

भारत में, हम नाटकीय ढंग से खाद्य आपूर्ति बढ़ाना चाहते हैं, लेकिन कुपोषण, भूख व कर्ज को घटाने में हम केवल रत्ती भर सफलता ही अर्जित कर पाये हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि –

- सार्वजनिक भूमि, जंगल, चारागाह, जल–जमाव वाले क्षेत्र या तो खराब हो गये हैं या फिर उनका व्यवसायीकरण कर दिया गया है।
- खेती एकल खेती पद्धति पर आधारित हो गयी है और मिट्टी का क्षरण हो रहा है, मिट्टी जहरीली हो गयी है, मिट्टी की क्षमता खत्म हो गयी है।
- हमारा शोध एक जैसी और उच्च बाहरी लागत वाली हाइब्रिड पौधों व जानवरों पर केन्द्रित हो गया है।
- देशज समुदायों को ज्ञान के स्रोत अथवा प्रगति के सहयोगी के तौर पर न देखकर हमेशा ''लाभार्थी'' या ''पिछड़ा'' के तौर पर देखा जाने लगा है।
- फसल एवं खेती की पद्धतियां स्थानीय जलवायु और जैव विविधता के लाभप्रद आधार पर नियोजित नहीं की जा रही हैं।

भविष्य में खेती निम्न प्रकार की होगी –

- लागत प्रभावी – के तौर पर किसान खुले बाजार में सौदा कर सकेंगें, जहां सरकार द्वारा समर्थन मूल्य की कोई निश्चितता नहीं होगी।
- सफल ऊर्जा – के तौर पर जीवाश्म ईंधन और बिजली के दामों में बढ़ोत्तरी की संभावना है।
- सफल जल – के स्रोत के तौर पर सूखा बढ़ेगा और संसाधनों का निजीकरण होगा।
- उत्पादकता – के तौर पर खेती और श्रम दोनों का मूल्य बढ़ेगा।
- उबरने की क्षमता – के तौर पर मृदा क्षरण, जलवायु के उतार–चढ़ाव और पुर्नुत्पादकता के बावजूद न्यूनतम मात्रा में उपज बढ़ेगी

इस प्रकार बहुत से ऐसी प्राकृतिक पारिस्थितिकी जैसे – जंगल, जलीय भूमि आदि अपनी पारिस्थितिक क्रियाएं करने में सक्षम होना चाहते हैं, जिससे निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति होगी –

- बहुस्तरीय व्यवस्था वाली खेती आवश्यक होगी। कुछ पौधों (मौसमी / बारहमासी), जानवरों और जलीय जीवों, कीड़ों और सूक्ष्म जीवों का संयोजन होगा।
- आवश्यक रूप से अच्छी तरह से एकीकृत अथवा शून्य अपव्यय पर खेती होगी। सभी फसल और जानवरों के अपशिष्टों का प्रयोग बहु आयामी प्रक्रियाओं के माध्यम से होगा। प्रायः बायो–डिगेस्टर, गैसीफायर, फर्मेन्टर के प्रयोग से पोषक तत्वों के त्यागने की गति बढ़ रही है। जैव सकर्मक, केंचुआ, शैवाल आदि भी भूमिका निभायेगें।
- उपयोग किये गये जल व ऊर्जा के अधिकाधिक रूप से दुबारा प्रयोग होगा। कृत्रिम रसायनों का प्रयोग मजबूती से कम होगा और कृत्रिम कीटनाशकों के प्रयोग का एकदम से बन्द हो जायेगा। प्लास्टिक और अन्य जैव प्रदूषण तत्वों का प्रयोग कम होगा।
- खेती का ढांचा इस प्रकार होगा कि स्थानीय जमीनी दशा, मिट्टी और जलवायु के साथ–साथ जैव विविधता और सांस्कृतिक विविधता के लाभों को लिया जा सकेगा। ऊपर से नीचे की ओर प्रसार व प्रयोगशाला से खेत के प्रस्ताव की जगह सहभागी क्रिया शोध और सहभागी तकनीक विकास / आकलन प्रस्ताव काम करेगा।

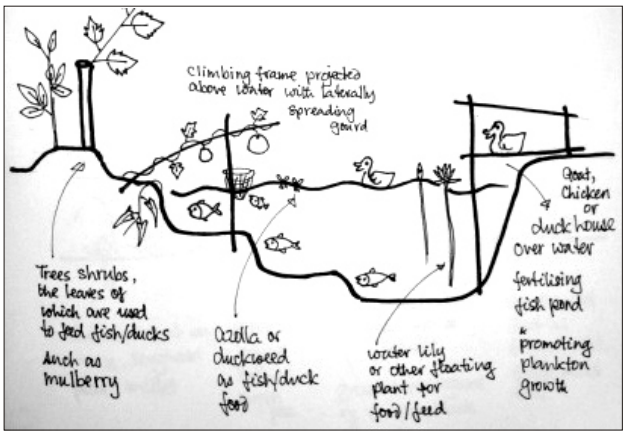

- किसान / माली आपसी सहकारी समूहों विशेषकर मृदा व जल संरक्षण कार्य, खेत व बागीचे या जंगलों के चारों तरफ सामूहिक बाड़ा लगाने, बीज बैंक और आकस्मिक अनाज संचय प्रबन्ध, जल संभरण और जल के आदान–प्रदान के लिए बनाये गये आपसी सहकारी समूहों में मिल कर काम करेगें।
- प्रकृति और संस्कृति में विविधता सक्रियता के साथ पुनःस्थापित होगी और उपभोग किये जा सकेगी। बहुत से वृक्ष, कीड़े, चिड़ियों, खर–पतवारों और कीटों और उनसे उत्पन्न समस्याओं को महसूस किया जायेगा और इसमें अध्ययन की संभावनाएं / क्षमताएं प्रबल होगीं। इन पर आधारित और कम

उपयोगी फसल अवशेषों, जानवरों के अपशिष्टों और उप उत्पाद, गैर इमारती जंगलोत्पादों आदि छोटे उद्योगों की एक विशाल श्रृंखला को मजबूत आजीविका विकल्पों के तौर पर आरम्भ किया जा सकेगा।

बीज एकत्रीकरण, ग्राम संचयन (अधिकांशतः धान), रिवाल्विंग फण्ड, लघु सिंचाई तंत्र को सामूहिक रूप से संचालित करने की कोशिश की जा सकती है, लेकिन बहुत बड़े पैमाने पर नहीं। ठीक इसी प्रकार आहार और जंगल आधारित उत्पादों के प्रसंस्करण और विपणन के लिए भी यह बात सत्य है।

विविधीकृत खेती तंत्र के प्रसार के अवरोध

- वे लोग, जिनका अपनी जमीन से अधिक जुड़ाव होता है, उनके सफलता की संभावना अधिक है। बाढ़ आच्छादित मैदानी क्षेत्र में रहने वाले लोगों के खेत प्रायः घर से दूर होते हैं। प्रायः जमीन टुकड़ों में भी बंटी होती है।
- बहुत बड़ी संख्या में किसान बंटाई पर खेती करने वाले होते है और वे अपने खेत को पुनर्आकार अथवा पुर्ननियोजित नहीं कर सकते।
- विशेषकर छोटे किसानों को जमीन को सही आकार प्रदान करने, वृक्षारोपण, छोटी पारम्परिक चिड़ियों, जानवरों, मछलियों आदि के पालन हेतु ऋण की उपलब्धता नहीं होती। संस्थागत स्रोतों से लिया गया ऋण प्रायः हमेशा उच्च बाहरी लागत आधारित, उच्च वापसी, उच्च जोखिम से जुड़ा होता है और अधिकांश स्थितियों में बीमा की उपलब्धता नहीं होती या फिर मिलती भी है तो केवल व्यवसायिक फसलों पर।
- यदि किसान और आस–पास के लोग / पड़ोसी सहयोगी नहीं होगें तो यह बहुत कठिन है कि कुछ किसान मिलकर फसल पद्धति को बदल दें और जानवरों, चिड़ियों, मछलियों आदि को एकीकृत कर सकें, क्योंकि वे प्रदूषण और अनाधिकृत शिकार की वजह से बहुत अधिक नाजुक होते हैं।

विविधता से भरपूर एकीकृत खेती, पारिस्थितिकी तकनीकी आवश्यकता को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक है कि सामाजिक इन्जिनियरिंग के साथ समन्वयन बनाया जाये और अपनी विश्वसनीय सूचनाओं और प्रक्षिणों / सलाहकार सेवाओं, ऋण के समानान्तर / बीमा और प्रसंस्करण / विपणन सहयोग की ओर वापस आयें। किसान संगठनों और नागर–समाज संगठनों दोनों का ही सन्दर्भ भोजन और आजीविका सुरक्षा से जुड़ा हुआ है। अतः अच्छे भविश्य के ओर जाने के लिए सहयोग व समन्वयन आवश्यक है।

भारत के बहुत से भागों में विभिन्न समुदायों के साथ प्रशिक्षक / सलाहकार / योजनाकार के तौर पर काम करने के अपने तीन दशकों के अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दक्षिणी एशिया और दक्षिणी पूर्वी एशिया में विविध कृषिगत जलवायु क्षेत्र और कृषि–पारिस्थितिकी है, जो विविधीकृत खेती तंत्र के अनेक सिद्धान्तों और तकनीकों के संयोजन में शामिल होती हैं। यदि हम सिद्धान्तों और तकनीकों का संयोजन पारम्परिक गृहवाटिकाओं / कृषि वानिकी, पर्वतीय और सूखा क्षेत्रों में मिश्रित खेती, धान आधारित नीची भूमि की खेती आदि में करते हैं तो इनके साथ मिट्टी और जल संरक्षण, जैव रसायनों और वानस्पतिक कीट नियन्त्रणकर्त्ता, बायोगैस और उत्पादक गैस उत्सर्जन, कृषि वानिकी में बहुउपयोगी वृक्षों और झाड़ियों को बढ़ाने, सजीव बाड़ों, भोजन और जंगल आदि का आधुनिक ज्ञान व तकनीक खाद्य असुरक्षा और गरीबी दोनों को कड़ाई से घटा सकेगा। ■

निदेशक
डेवलपमेन्ट रिसर्च कम्यूनिकेशन एण्ड सर्विस सेन्टर
58 ए, धर्मटोला रोड, बोसपुकुर, कस्बा,
कोलकाता– 700 042 (पश्चिम बंगाल)
ईमेल : ardhendu.sc@gmail.com, drcsc@alliancekolkota.com

Farming Diversity
LEISA INDIA, Vol. 11, No.1, Pg. # 8-10, March 2009

कुछ विचार, जिनका परीक्षण सफलतापूर्वक किया गया, उनके मुख्य बिन्दु निम्नवत् हैं –

	उच्च वर्षा वाले क्षेत्र	निम्न वर्षा वाले क्षेत्र
गृहवाटिका	– ऊँची क्यारी बनाना अथवा गहरी नाली व्यवस्था – तैरती नर्सरी और औषधीय बागीचा – बहु स्तरीय सजीव बाड़े और बागीचे – छोटी पर बहुउपयोगी खाई / तालाब	– छत के पानी का एकत्रीकरण, टपक विधि से सिंचाई – सूखा सहन करने वाले वृक्षा और पूरक भोजन के तौर पर झाड़िया, चिड़िया और जानवर – महत्वपूर्ण भोजन संरक्षण (जड़े, कन्द, खाने योग्य पत्तियां आदि)
छोटे खेत / फसल क्षेत्र	– अजोला के साथ धान की खेती / बत्तख / मछली आदि पालन – जलीय खर–पतवारों और बायोगैस के प्रयोग से वर्मीकम्पोस्ट बनाना – गहरी जुताई के साथ आलू की बुवाई नहीं करना (विशेषकर समुद्रतटीय क्षेत्रों में) – फलियों, तिलहनों, मसालों और औषधीय आदि की खेती चक्रीय आधार पर	– बहु सीढ़ी, पेड़ों के साथ जल संभरण तालाब और मेड़ पर झाड़िया – वर्षा आधारित, कम वर्षा वाले अनाज, फलियों, तिलहन की अन्तः फसल – मानसून के दौरान खेत की मेड़ों पर सब्ज़िया, फलियां उगाना – जाड़ों में मशरूम की खेती
सार्वजनिक भूमि	– महिलाओं और बच्चों के समूहों द्वारा सामुदायिक जमीन और लीज़ पर ली गई निजी भूमि पर बहु जातीय / बहुतलीय अच्छे जंगल, सब्ज़िया उगाना	– सड़क के किनारे, नहरों व तालाबों के किनारे आदि पर लगाये गये बहु उपयोगी वृक्षों का प्रबन्धन समुदाय द्वारा – बेकार भूमि, कब्रिस्तान के बड़े अहाते, दाह संस्कार वाली भूमि आदि पर जैव विविधतापूर्ण वृक्षों का रोपण

आजीविका स्थाईत्व के लिए ओरानों का संरक्षण

अरावली की पहाड़ियों में निवास करने वाले समुदायों व पशुओं के भोजन, चारे, जल और ईंधन का एक प्रमुख स्रोत ओरान हैं। स्थानीय समुदायों ने एक संस्था ''कृषि एवं पारिस्थितिकी विकास संस्थान'' के सहयोग से ओरानों को संरक्षित कर लाभदायी गतिविधियों के उन्नयन/ प्रसार का कार्य किया है।

अमन सिंह और आदित्य गुप्ता

राजस्थान के अलवर जिले में स्थित मीना की धानी शुद्ध रूप से जनजातीय गांव है, जहां पर घरों की संख्या लगभग 100 और अनुमानित जनसंख्या 1000 है। यहां पर रहने वाले अधिकतर या तो किसान हैं या फिर चरवाहे। मुख्य फसलों के तौर पर यहां बाजरा, मक्का, ज्वार, तिल, छोला प्याज, गेंहूं, सरसो, चना और जौ उगाई जाती है। गांव में बहुत से लोगों द्वारा अधिकतम मात्रा में पशुधन आधारित खेती करने के कारण गांव में बड़ी मात्रा में घरेलू जानवर जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरियां और ऊंट पाले जाते हैं। भैंसों व बकरियों की संख्या तो प्रत्येक की हजार से ऊपर होने के कारण इनका उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है।

गांव मीना की धानी के चारों तरफ स्थित अदावल की देववानी पहाड़िया हैं, जो स्थानीय तौर पर ओरान के नाम से भी प्रचलित हैं। ओरान के द्वारा आच्छादित कुल क्षेत्रफल 150 हेक्टेयर है। ओरान जैव विविधता से समृद्ध हैं। मोटा आंकड़ा है कि वर्तमान में ओरान में कुल 3420 पेड़ उगे हैं। लगभग 15 प्रजातियों के वृक्ष जैसे ढाक, कदम्ब, कीकर आदि इस ओरान में बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं और गांव वाले इनका प्रयोग भोजन, जानवरों के चारे, ईंधन और औशधियों के रूप में करते हैं। जंगली जानवरों जैसे – सांभर, नीलगाय, जंगली सुअर और मोर भी ओरान में पाये जाते हैं। कुछ प्रजातियां जैसे तेंदुआ व शेर जो कुछ दशक पहले यहां के जंगलों में घूमते देखे जाते थे, अब गायब हो चुके हैं।

परम्परागत रूप से, ओरान की देख–रेख एवं इसे आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी ग्राम्य संगठन ''थाइन'' की थी। थाइन के विघटन के साथ ही आधुनिक संगठनों जैसे ग्राम पंचायत ने ओरान्स के प्रबन्धन में कोई विशेष रूचि नहीं दिखाई। इसका एक कारण यह भी था कि स्थानीय लोगों को उनके अपने संसाधनों के प्रबन्धन से बाहर कर दिया गया। नतीजतन इसमें दिनों–दिन गिरावट आती गयी। राजस्थान स्थित संस्था ''कृषि एवं पारिस्थितिकी विकास संस्थान'', का गठन वर्ष 1992 में हुआ। संस्था समुदाय विकास के अन्य मुद्दों के साथ ओरानों के समुदाय केन्द्रित पुनरूद्धार पर भी कार्य कर रही है। संस्था तीन स्तरों पर कार्य कर रही है– समुदाय स्तर पर ओरानों का पुनरूद्धार, व्यक्तिगत स्तर पर अपने आजीविका के मुद्दों को सम्बोधित करना और नीतिगत स्तर पर ओरान प्रबन्धन को ध्यान में रखते हुए राज्य नीतियों में बदलाव लाना। वर्तमान में संस्था

राजस्थान के अलवर, जयपुर और दौसा जिले के 100 गांवों में लगभग 2000 हेक्टेयर के घेरे में 100 ओरानों को पुनःस्थापित करने के लिए काम कर रही है।

ओरान की सुरक्षा

मीना की धानी में सबसे पहले लोग ''वन समिति'' में संगठित हुए। लोगों को ओरान और देववानी को सुरक्षित करने के फायदे के बारे में बताने हेतु बड़ी संख्या में बैठकें आयोजित की गयीं।

लोगों ने ओरान की सुरक्षा के कार्यक्रम में उत्साह पूर्वक भाग लिया। उन्होंने अपने पहले प्रयास के रूप में जल संगह स्रोतों को बहाल करने का काम किया। पारम्परिक जल संभरण तकनीकों में आधुनिक वैज्ञानिक विशेषज्ञता का समन्वय करते हुए स्थानीय सामग्रियों के प्रयोग से जल संग्रह ढांचों (तालाबों) का पुनर्नवीनी–करण किया गया। कुछ स्थानों पर नये तालाबों का निर्माण भी किया गया। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि भौगोलिक विश्लेषण करने के बाद ही नये तालाबों के स्थान का निर्णय किया गया था। स्थान का निर्धारण इस तथ्य पर भी आधारित था कि ऐसी जगह पर तालाबों का निर्माण किया जाये, जहां अधिकाधिक पानी का संग्रह किया जा सके। तालाबों का निर्माण स्थानीय सामग्रियों जैसे चिकनी मिट्टी, पत्थर/चट्टान, घासों और भैंसों के गोबर से किया गया, जो लोगों की सामर्थ्य में था और जिसके प्रयोग में वे दुहराव ला सकते थे। कृषि क्षेत्रों में सिंचाई के लिए पाइप था। जल उपलब्धता और जल की प्रभावोत्पादकता का अनवरत निरीक्षण किया जा रहा था।

आजीविका की सुरक्षा

इस क्षेत्र में कृषि पूर्णतया वर्षा आधारित है। इसके अतिरिक्त, तरंगित स्थलाकृति के तौर पर कृषिगत क्षेत्र मृदा क्षरण से प्रभावित हैं, जिसके कारण मुख्य रूप से मिट्टी का नुकसान तो होता ही है, जल का भी बहुत नुकसान होता है। इसके अलावा कृषि में अन्य समस्याओं जैसे– पारम्परिक देशज बीजों की अनुपलब्धता और

रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग आदि का सामना भी लोगों को करना पड़ रहा है। रसायनों का प्रयोग न केवल मिट्टी को प्रभावित कर रहा है, वरन् इसके कारण कृषिगत अपशिष्टों को खाने वाले जानवरों का खाना भी जहरीला होता जा रहा है।

मृदा क्षरण, ढांचे जैसे ''टाक'' नाली बनाने, मेड़बन्दी/खेतों की सुरक्षा के लिए खेत के किनारों पर बाड़ बनाने आदि मुद्दों को उठाया गया। खाई बनाने, जमीन को समतल करने जैसी अन्य गतिविधियों को शामिल किया गया।

ओरान में स्थानीय सूक्ष्म जैव विविधता सुरक्षित रहने के साथ ही यहां एक स्थानीय देवी या देवता का मंदिर भी है। अरावली क्षेत्र की पहाड़ियों में पाये जाने वाले अधिकांश ओरानों में एक जल स्रोत या नाले होते हैं, जो उनके द्वारा चलते हैं यह नदी और तालाबों की एक प्रजाति है, जो बीचों–बीच से बहती है। यह शुद्ध रूप से निवास करने के स्थानों को भी आच्छादित कर सकती है। ये स्थानीय जंगल आकार में काफी बड़े अर्थात 100 बीघे से लेकर 500 बीघे (100 हेक्टेयर) तक के क्षेत्र में फैले होते हैं।

रसायनों के प्रयोग को नियन्त्रित करने के लिए किसानों को प्रकृति सम्मत खेती की पारम्परिक विधियां अपनाने हेतु उत्प्रेरित किया गया। जोहड़ों के निकट की भूमि पर वृक्षारोपण भी किया गया। वृक्षारोपण से दो फायदे हुए– एक तो पेड़ों की संख्या और प्रजातियां बढ़ीं, दूसरी तरफ मृदा क्षरण रूका। यहां पर चरवाहों की अधिकता होने के कारण बहुत सी गतिविधियां उनके पशुधन एवं उत्पादन को बढ़ाने के लिए की गयीं। जैसे– उन्नत प्रजातियों को प्रोत्साहित करना, पशु स्वास्थ्य शिविर संचालित करना, स्थानीय लोगों को घर–घर, जाकर अपनी सेवाएं देने हेतु पशु स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता के रूप में प्रशिक्षित करना आदि किया गया। घासों के बीजों को बहुत बड़े परिक्षेत्र में बिखेर दिया गया, जिससे घासों की संख्या में वृद्धि हुई और जानवरों के चरने के लिए एक बड़ा भू–भाग मिल गया।

परिणाम

उपरोक्त गतिविधियों के सकारात्मक परिणाम के तौर पर देखा गया कि यहां पर भूमिगत जलस्तर बढ़ा और भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ी, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार हुआ, वनस्पतियों की संख्या बढ़ी और स्थानीय प्रजातियां जो विलुप्त हो गयीं थी, उनका पुनः प्रादुर्भाव हुआ। जल संरक्षण गतिविधियों के साथ–साथ जल स्तर में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। मानसून के बाद भी पानी की आपूर्ति में निरन्तरता बनी रही, जिससे सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता सुनिश्चित हुई। इसके चारों तरफ के क्षेत्र हरे–भरे हो गये हैं, बहुत से पेड़–पौधे कड़ी गर्मी में भी अपने अस्तित्व को बनाये रखने में सक्षम हो गये हैं। भारी मात्रा में घासों और झाड़ियों की उपलब्धता से अधिक जानवर आराम से चराई करने में सक्षम हो गये हैं। स्थानीय पारिस्थितिकी को पुनःस्थापित एवं सुरक्षित किया गया। पिछले कुछ वर्षों में नीलगाय, रोगिया और बन्दरों के कुछ प्रजातियों की यहां पर पुनः वापसी हुई है।

वन समिति और महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों की स्थापना के माध्यम से स्थानीय समुदायों के लिए आय जनक अवसरों में भी मजबूती आई है। ये समूह विभिन्न मुद्दों जैसे– पेड़–पौधों और जानवरों के स्वास्थ्य, उन्नत प्रजनन और चारा प्रबन्धन पर काम करते हैं। छोटे–छोटे गैर इमारती लकड़ी वाले जंगल उत्पाद जैसे शहद, बेर (फल) डलिया बनाने के लिए घासें और बर्तन बनाने के लिए मिट्टी आदि प्राप्त कर बाजार में बेचते हैं। यह महिलाओं के लिए आमदनी का एक स्रोत हो गया है। ओरान की सम्पत्ति अब सभी गांव वालों के लिए समान रूप से है। यहां वे अपने जानवरों को चरा सकते हैं, जानवरों के पीने और सिंचाई के लिए पानी का प्रयोग कर सकते हैं, लेकिन साथ ही यह भी दृढ़ता से पालन करना है कि वे पेड़ नहीं

फोटो : के.आर.ए.पी.ए.वी.आई.एस.

ओरान में जल संग्रह ढांचों के प्रबन्धन में सक्रियता से लगे स्थानीय समुदाय के लोग

फोटो : के0आर0ए0पी0ए0वी0आई0एस0

जानवरों के चारे हेतु एक स्रोत के तौर पर ओरानों का संरक्षण

काटेंगें। प्रयोगकर्त्ताओं के विभिन्न समुदायों के बीच एक मजबूत आन्तरिक सामाजिक नियन्त्रण तंत्र हैं, जो अतिक्रमण के विरूद्ध प्रभावी दण्ड निर्गत करने में सक्षम है। संसाधन प्रयोगकर्त्ताओं और संसाधन प्रयोगकर्त्ताओं के मजबूत हितभागीकर्ता के बीच में परस्पर विरोधी प्रस्ताव के लिए एक तंत्र है, जो ओरान के रख–रखाव के लिए वार्षिक अंशदान के शर्तों को सुस्पष्ट करता है।

यदि हमारा देववानी ठीक है, तो सब कुछ ठीक है। यदि यह ठीक नहीं है, तो चारा, पानी और भोजन के लाले हैं।

मीना की धानी के लोग

ओरान जैव विविधता, पशुधन और खेती के बीच एक पूरक सम्बन्ध स्थापित करता है। जो कि संसाधन प्रयोगकर्त्ताओं की आजीविका एवं समुदाय की आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक व आध्यात्मिक आवश्यकता पूरी करने के लिए बैठकें करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। लोग कृषि एवं पारिस्थितिकी विकास संस्थान के सहयोग व दिशा निर्देशन के साथ सुरक्षित देववानी के लाभप्रद अभ्यासों को उन्नत करने में निरन्तर लगे हुए हैं।

■

कृषि एवं पारिस्थितिकी विकास संस्थान
5/218, काला कुंआ, अलवर– 301001
राजस्थान
ईमेल : krapavis_oran@rediffmail.com

Livestock for Sustainable Livelihoods
LEISA INDIA, Volume 12, No. 1, Pg # 18 -20, March 2010

जन आधारित विकास सुदृढ़ीकरण : सहभागिता को पुनः परिभाषित करने हेतु स्थानीय समुदायों, स्वैच्छिक संगठनों और दाता संस्थाओं का संयुक्त प्रयास

केवल स्वयं पर विश्वास रखने वाला समुदाय ही स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में अपने संसाधनों और सहभागिता पर नियन्त्रण रखकर स्थानीय परियोजना स्तर से परे जाकर बदलाव लाने की क्षमता रखता है। यह जन आधारित विकास की प्रक्रिया को फेसिलिटेट कर बहुत आसानी से हासिल की जा सकती है, जिसे इन मुद्दों पर कार्य करने वाली विकास संस्थाओं का रास्ता बदलना कहा जा सकता है। प्रायोगिक सीख के लिए खुली चर्चा, बराबर सीखने और नये सृजन के अवसर कुछ विकासात्मक प्रस्तावों के महत्वपूर्ण तत्व हैं। माइजेरियर सामुदायिक स्तर पर विस्तृत प्रभावों के साथ विकासात्मक पहलों को सहयोग करता है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान, भारत और बांगलादेश में कई संस्थाओं ने किसानों को शामिल करते हुए उनकी सहभागिता से बहुत अच्छे परिणाम दिये हैं। लघु सीमान्त किसानों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों को सशक्त बनाने की प्रक्रिया में जन आधारित प्रस्तावों द्वारा दिये गये परिणाम अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

इस दस्तावेज़ में भारत और बांग्लादेश की सहभागी संस्थाओं द्वारा जन आधारित विकास प्रक्रिया को फैसिलिटेट करने सम्बन्धी कई सफल अनुभवों के उदाहरण दर्ज हैं। ये घटनाएं यह दर्शाती हैं कि किस प्रकार आज स्थानीय समुदाय अधिक आत्मविश्वासी व अपनी क्षमताओं के प्रति अधिक जागरूक हो चुके हैं। वे परिस्थितियों को आलोचनात्मक ढंग से समझने और उनके स्थानीय समाधानों को उपलब्ध कराने में सक्षम हो चुके हैं।

यह दस्तावेज़ ए0एम0ई0 फाउण्डेशन, बैंग्लोर और इलिया, दि नीदरलैण्ड्स का एक संयुक्त प्रयास है। यह स्थानीय समुदायों, सहयोगी संस्थाओं और माइजेरियर की सक्रिय सहभागिता के साथ एक सुपरिष्कृत सहभागी प्रक्रिया का परिणाम है।

■